RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र./भोपाल/261/2015-17 प्रकाशन तिथि 10 मई 2017

चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका अप्रैल-मई 2017

मूल्य ₹ 100

गर्मी का मौसम

इस्माइल मेरठी

मई का आन पहुँचा है महीना
बहा चोटी से एड़ी तक पसीना
बजे बारह तो सूरज सर पे आया
हुआ पैरों तले पोशिदा[1] साया
चली लू और तड़ाके की पड़ी धूप
लपट है आग की गोया कड़ी धूप
ज़मीन है या कोई जलता तवा है
कोई शाला है या पछुआ हवा है
दरो दीवार हैं गर्मी से तपते
बनी-आदम[2] हैं मछली से तड़पते
परिन्दे उड़के हैं पानी में गिरते
चरिन्दे[3] भी हैं घबराए से फिरते
दरिन्दे छुप गए हैं झाड़ियों में
मगर डूबे पड़े हैं खाइयों में
न पूछो कुछ गरीबों के मकां की
ज़मीन का फर्श है छत आसमां की
न पँखा है न टट्टी न कमरा
ज़रा सी झोंपड़ी मेहनत का समरा[4]
अमीरों को मुबारक हो हवेली
गरीबों का भी है अल्लाह बेली

1- *छिपा हुआ* 2-*इंसान* 3-*चौपाया* 4-*फल*

चित्र - अतनु राय

बाल विज्ञान पत्रिका

चकमक

अंक 367-8 अप्रैल- मई 2017

इस अंक में

2 गर्मी का मौसम - इस्माइल मेरठी

4 सूखे पेड़ बेजान नहीं होते - हार्दिक राठौर

6 सर्दियों की रात में गाय - उदयन वाजपेयी

8 एक बस ड्राइवर की कहानी जो ईश्वर बनना चाहता था - इट्गर कैरेट

12 चंडीगढ़ का वो अफ्रीका, युरोप और चीन - मीता वशिष्ठ

14 दिल्ली में उनींदे - गगन गिल

22 रिकॉर्ड मैंने नहीं तोड़ा - शरद जोशी

24 कन्धा तराजू - कन्धारू - विनोद कुमार शुक्ल

30 स्याणा - अनिरुद्ध उमट

33 बोली रंगोली

42 माँ की बेबसी - कुँवर नारायण

48 अजीब-सी अनिशा - ज्योत्सना

50 फोटोग्राफर मैं मन का - दिलीप चिंचालकर

52 एक नायाब शिल्प - अशोक भौमिक

54 द लास्ट ग्लिम्प्स - प्रियम्वद

60 मेरा पन्ना

62 मेरे मम्मी-पापा - नेहा सिंह

65 हम कहानी क्यों कहते हैं? - कुमार अम्बुज

68 माथापच्ची

70 क्यूँ क्यूँ चिड़िया - यायावर

71 चाँद - मेहा

71 चित्र पहेली

आवरण चित्र
शुद्धसत्व बसु

हाशिए के चित्र
शुभम लखेरा

डिज़ाइन
दिलीप चिंचालकर

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी
मिताली अहीर

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

वितरण
झनक राम साहू

सहयोग
वरुण ग्रोवर
प्रभात
मिहिर
कमलेश यादव
ब्रजेश सिंह

इकतारा द्वारा विकसित

एक प्रति :	100.00
वार्षिक :	500.00
तीन साल :	1350.00
आजीवन :	6000.00

सभी डाक खर्च हम देंगे।

चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं।
एकलव्य भोपाल के खाते में ऑनलाइन जमा करने के लिए विवरण-
बैंक का नाम व पता - स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, महावीर नगर, भोपाल
खाता नम्बर - 10107770248
IFSC कोड - SBIN0003867
कृपया खाते में राशि डालने के बाद इसकी पूरी जानकारी accounts.pitara@eklavya.in पर ज़रूर दें।

एकलव्य

ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. 462 016, फोन: (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्स: (0755) 2551108, e mail - chakmak@eklavya.in, e mail - circulation@eklavya.in, www.chakmak.eklavya.in, www.eklavya.in

सूखे पेड़ बेजान नहीं होते ...

हार्दिक राठौर

ये जो उल्लू के जोड़े को तुम देख रहे हो उस पर मैं 2013 से एक डॉक्यूमेंट्री बना रहा हूँ। कभी मेरे मन में नहीं आया कि किसी दिन कोई इसे गिरा देगा। काट देगा। ...पर एक दिन इस सूखे पेड़ पर किसी की नज़र पड़ी। उसे लगा होगा कि अब इस पेड़ में क्या बचा है। मरा पेड़ है। और शायद यही सोचकर उसने इसे काटने की कोशिश की।

पर इस उल्लू के परिवार के रहते क्या यह पेड़ मृत है? उल्लू कितनी बार इस पेड़ से उड़ता होगा ...और फिर कितनी ही बार वापिस आता होगा। जाने कितने पक्षी आते होंगे।

...पेड़ सूख जाते हैं पर वे मरते नहीं हैं...यही सोचकर मैंने इस पेड़ पर एक बैनर टाँग दिया – ये पेड़ गिरेगा या उल्लुओं का घर...

एक सूखे पेड़ में कई ज़िन्दगियाँ साँस लेती हैं। क्या हम पेड़ को इनसे अलग रखके देख सकते हैं!

फोटोः हार्दिक राठौर, गाँधीनगर, गुजरात

ये पेड़ गिरेगा या उल्लुओं का घर?

यहाँ तोते आते हैं - और मैनाएँ भी

अपने आसपास के सूखे पेड़ों को देखना। और उनकी फोटो, उनकी कहानी हमें भेजना।

सर्दियों की रात में गाय

उदयन वाजपेयी

हमारे शहर में उन दिनों खूब सर्दियाँ पड़ती थीं। सारी गलियाँ, सारी सड़कें, सारे खेत, सारे मैदान कोहरे से ढँक जाते। बच्चे रज़ाइयों में बैठकर ही बड़ी बहनों से कहानियाँ सुनते। उन सर्द रातों में हमारी माँ थोड़ा-सा काँपती-सी घर की तीन गायों और दो भैंसों को बोरे ओढ़ाती थी कि उन्हें सर्दी से बचाया जा सके। यह काम वह देर रात में करती थी। इसके पहले सार (घर का वह हिस्सा जहाँ गाय-भैंस रहते थे) में हलकी-सी आग जलाई जाती थी कि वहाँ गर्मी बनी रहे और गाय-भैंस और उनके बच्चे ठिठुरन से बचे रहें। हमारी माँ बोरे का ही बना पर्दा हटाकर सार में प्रवेश करतीं। उन्हें उन कँपकँपाती रातों में सार में आता देख गाएँ धीरे-से मुड़कर उनकी ओर देखती थीं। मुझे उनकी वह हैरानी इतनी करुण पर साथ ही इतनी आकर्षक लगती कि उसे देखने ही मैं माँ के पीछे-पीछे उन रातों को सार जाया करता था। वह पहले बछड़ों को बोरा पहनाती। बोरा यानी रस्सी से बुने बोरे को काटकर बनाई गई पोशाक, जिसे गाय-भैंसों की पीठ पर बाँध दिया जाता था। वह यह इतनी नफासत से करती मानो किसी बच्चे को स्वेटर पहना रही हो। बछड़ों के बाद भैंस के "पड़ों" (बच्चों) को बोरे पहनाए जाते। इसके बाद गायों और भैंसों को। सार में गोबर और पेशाब की गन्ध फैली रहती थी। वह बुरी नहीं लगती थी। मेरा पूरा ध्यान गायों और भैंसों की करुण और लगभग जलती आँखों पर रहता था। वे मानो हमारी माँ से कह रही होतीं, "अम्मा अच्छा हुआ आप आ गईं, सर्दी बढ़ रही थी।"

हर सुबह हमारे घर की गाएँ, भैंसें, बछड़े और "पड़े" दूसरे मवेशियों के साथ शहर के पास ही के पहाड़ पर जाते थे। दिन में वे वहाँ घास-पात चरते थे, पेड़ों की छाया में बैठते थे, शाम को घर वापस आते थे। किसी भी गाय या भैंस को यह नहीं बताना पड़ता था कि उसे किस घर में जाना है। सभी अपने घरों को जाती थीं। उनके घर लौटते समय जो हलकी-सी धूल उनके चलने से उड़ती थी, उसी पर पल दो पल डूबते सूर्य की किरणें ठहर जाती थीं और शाम का रंग हलका पीला हो जाता था। इसी समय को गोधूली बेला कहते थे।

मैं जितना समझ पाया, उसके अनुसार हमारी माँ के लिए गाय का अर्थ सिर्फ गाय नहीं था, भैंस भी था, बकरी भी और घोड़ा भी। गाय का अर्थ सभी प्राणी थे। मनुष्य भी उन्हीं में शामिल था। गाय की सेवा का अर्थ गाय की सेवा के अलावा भैंस की सेवा करना भी था, बकरी की भी, घोड़े की भी सेवा करना था। और हाँ, मनुष्य की सेवा करना भी गाय की सेवा का अर्थ था। मैं सोच भी नहीं सकता कि कोई गाय की खातिर किसी से लड़ाई-झगड़ा, मार-पीट कर सकता है। ऐसे झगड़ालू लोग, मुझे विश्वास है, सर्दियों की ठिठुरती रातों में गायों को, भैंसों को, बछड़ों को, "पड़ों" को बोरे नहीं ओढ़ाते होंगे।

चित्र : नीलेश गहलोत

एक बस ड्राइवर की कहानी जो ईश्वर बनना चाहता था

इट्गर केरेट

ये एक बस ड्राइवर की कहानी है। एक ऐसे बस ड्राइवर की जो लेटलतीफों के लिए बस का दरवाज़ा कभी नहीं खोलता था। किसी के लिए भी नहीं। हाईस्कूल के उन हैरान-परेशान बच्चों के लिए भी नहीं जो बड़ी उम्मीद से बस के साथ-साथ दौड़ लगाते थे। उन तनाव-खाए, लोगों के लिए तो बिलकुल भी नहीं जो बस के दरवाज़े को इतनी ज़ोर-से पीटते थे मानो वे तो टाइम से पहुँचे थे और गलती बस ड्राइवर की थी। उन बूढ़ी औरतों तक के लिए भी नहीं जो हाथों में

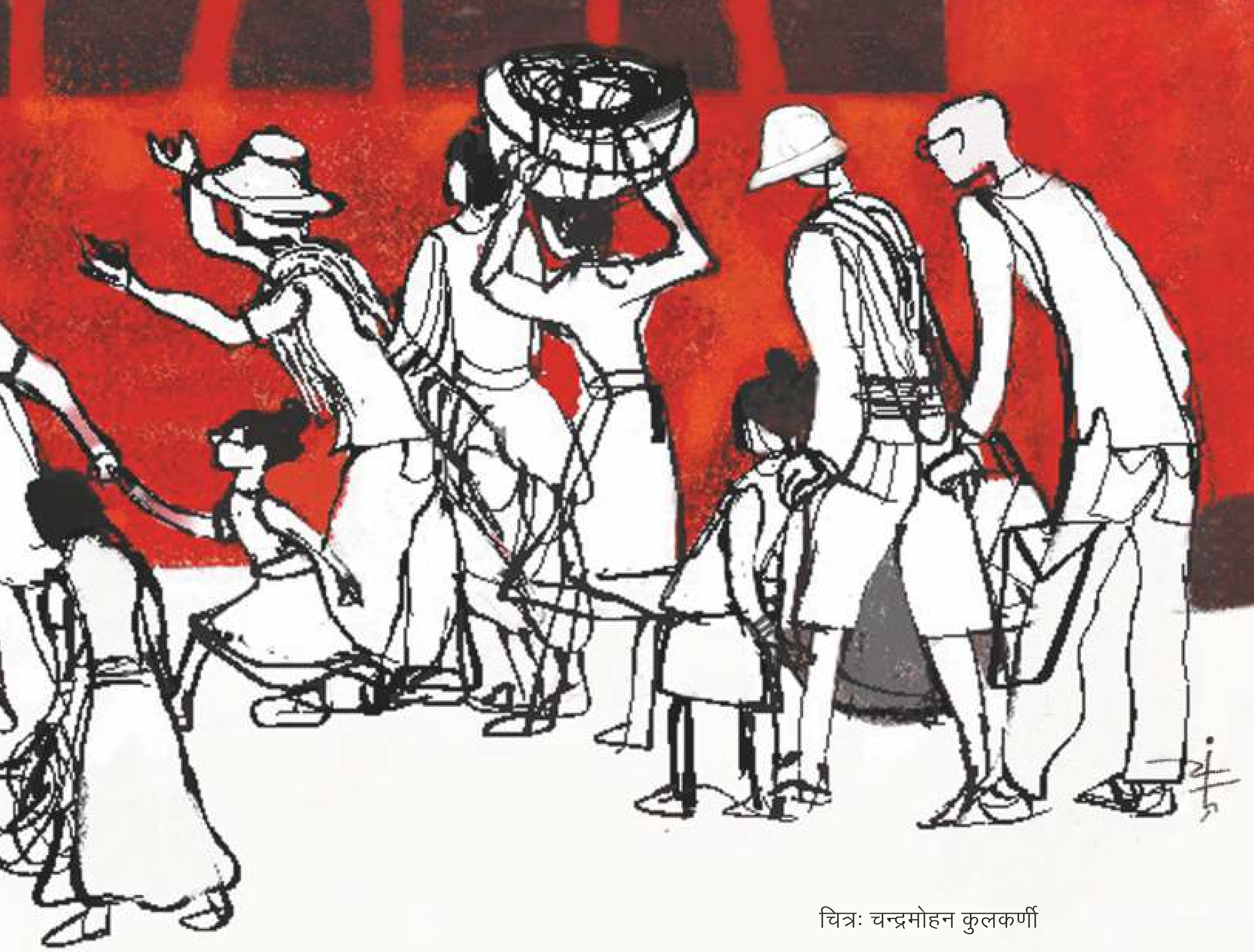

चित्रः चन्द्रमोहन कुलकर्णी

किराने से भरे खाकी लिफाफों को पकड़े बड़ी मुश्किल से काँपते हाथों से बस को रोकने का इशारा करती हैं। ऐसा इसलिए नहीं था कि वो बड़ा टुच्चा और बेरहम था, सही बताएँ तो उसमें वो टुच्चीवाली हड्डी थी ही नहीं। यहाँ मामला खालिस उसूल का था। ड्राइवर का मानना था कि देर से आए किसी बन्दे के लिए दरवाज़ा खोलने में अगर 30 सेकण्ड लगते हैं और अगर दरवाज़ा न खुले तो उसके जीवन के 15 मिनट वह खो देता है तब भी दरवाज़ा न खोलने में ही ज़्यादा लोगों का फायदा है। क्योंकि बस के 30 सेकण्ड रुकने से उसमें बैठा हर व्यक्ति अपने जीवन के 30 सेकण्ड खोएगा। और अगर बस में 60 लोग हैं जिन्होंने बस स्टॉप पर जल्दी पहुँचकर कुछ गलत नहीं किया, तब कुल मिलाकर उनका आधा घण्टा खराब होगा जो पन्द्रह मिनट का दो-गुना है। बस न रोकने के पीछे उसका यही सीधा-सादा हिसाब-किताब था। उसे मालूम था कि न तो बस में बैठे हुओं को और न उसके पीछे हाँफते-भागते लोगों को इसका ज़रा-भी अन्दाज़ होगा। उसे इस बात का अन्दाज़ था कि अधिकतर लोग उसके बारे में क्या सोचते होंगे। उसे गालियाँ बकते होंगे। वैसे, देखा जाए तो उसके लिए इससे आसान और क्या होता कि वह उन्हें बस में आने देता और बदले में वे मुस्कराते हुए उसका शुक्रिया अदा करते। पर वो जानता था कि उसे शुक्रिया व मुस्कराहटों और समाज की भलाई में से किसी एक को चुनना हो तो वह क्या चुनेगा।

बस ड्राइवर के इस उसूल की सबसे ज़्यादा मार एडी ही झेलता था। पर इस कहानी के दूसरे लोगों के उलट उसने कभी बस के पीछे भागने की कोशिश भी नहीं की। यह उसके आलसी और बेकारेपने की इन्तहा थी। एडी एक रेस्त्रां – कोफ्ता-ए-गोश्त – में खानसामा था। यहाँ का खाना बेस्वादी के इतने करीब था कि लोगों को यहाँ आकर कोफ्त ही होती होगी। इस नाम की वजह से ही एडी अपने बेवकूफ मालिक का कायल हो गया था।

खाना कितना ही बेस्वाद हो पर एडी बड़ा ही नेकदिल था। इतना नेक कि जब उससे कोई चीज़ बहुत अच्छी नहीं बनती थी तो वो खुद टेबल पर उसे परोसता और माफी माँगता। ऐसे ही एक माफी माँगने के दस्तूर के दौरान उसकी मुलाकात खुशी से हुई। या यूँ कहें कि एक लड़की में उसे खुशी दिखी। वह इतनी अच्छी थी कि उसने उसके बनाए भुने गोश्त को पूरे का पूरा खा लिया। सिर्फ इसलिए कि उसे बुरा न लगे। वह लड़की अपना नाम नहीं बताना चाह रही थी, न ही अपना फोन नम्बर। पर वह इतनी अच्छी थी कि अगले दिन पाँच बजे वह तय जगह पर उससे मिलने को तैयार हो गई। वह जगह डॉल्फिनेरियम थी जो उन दोनों ने मिलकर तय की थी।

अब एडी की अपनी दिक्कतें भी कम न थीं। पहली वो जिसने उससे ज़िन्दगी के कई हसीन पल छुड़वा लिए थे। ऐसा नहीं कि इसमें उसका गला इतना सूज जाता या ऐसा ही कुछ और हो जाता। पर इससे उसे काफी नुकसान हो चुका था। इस बीमारी के चलते वह 10 मिनिट ज़्यादा सोता था। अलार्म घड़ी बजे या ढोल नगाड़े बजें, उस पर कोई असर नहीं होता। तो कुल मिलाकर यह कि वो कोफ्ता-ए-गोश्त रोज़ ही देर से पहुँचता – एक तो यह कारण और दूसरा हमारे ड्राइवर महाशय जो सभी के भले को किसी एक के भले से अच्छा मानते हुए उसी पर अमल करते। लेकिन इस बार मामला चूँकि खुशी का था, एडी ने तय कर लिया कि वो दुनिया की किसी भी चीज़ को बीच में न आने देगा। दोपहर में झपकी लेने की बजाय वो जागता रहा और टीवी देखता रहा। एहतियात के बतौर उसने एक की बजाय तीन अलार्म लगाए साथ में उठाने के लिए वेकअप कॉल भी सेट कर दी। लेकिन उसकी बीमारी लाइलाज थी। एडी को बच्चों के चैनल देखते-देखते नींद आ गई। और वह गहरी नींद में सो गया। अचानक हज़ारों-लाखों चीखती अलार्म घड़ियों की आवाज़ से वो उठा। वह पसीने से भीगा हुआ था। दस मिनट ज़्यादा हो गए थे। वो झट बिना कपड़े बदले बस स्टॉप की ओर भागा। इतने दिनों में वह जैसे भागना भूल गया था। उसके उठे पैर लड़खड़ा रहे थे। आखिरी बार वह तब दौड़ा

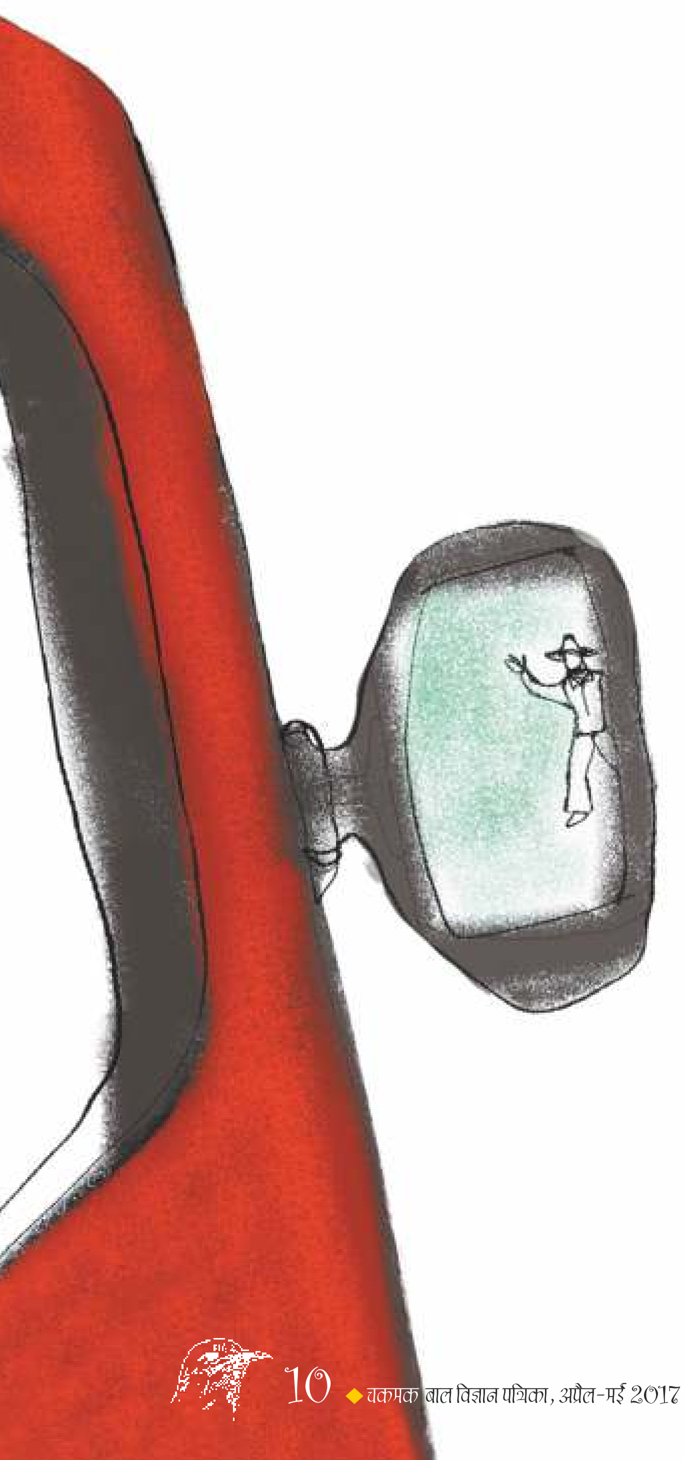

था जब उसे पता चला था कि इस तरह वो अपनी जिम क्लास से छुटकारा पा सकता था। तब वह छठी क्लास में था। हालाँकि उसके उलट आज वह पागलों की तरह दौड़ रहा था क्योंकि आज उसे कुछ खो देने का डर था। उसके सीने के दर्द और साँसों की घर्र-घर्र को वो उसके और खुशी के बीच में नहीं आने देने वाला था। कोई भी उसके रास्ते में नहीं आ सकता था सिवाए हमारे बस ड्राइवर के जो बस का दरवाज़ा बन्द कर बस चलने ही वाला था। उसने साइडवाले काँच में एडी को आते देख लिया था। पर जैसा कि हमें पता है, उसका एक उसूल था। बहुत सोचा-समझा उसूल जो इंसाफपसन्दगी और संख्याओं के मामूली हिसाब-किताब की बुनियाद पर खड़ा था। पर एडी को ड्राइवर के इस गुणा-भाग में ज़रा दिलचस्पी नहीं थी। ज़िन्दगी में पहली बार तो वह इतनी शिद्दत से किसी जगह पर समय पर पहुँचना चाहता था। इसलिए कोई भी उम्मीद न होने के बावजूद वो बस के पीछे भागता रहा।

अचानक एडी की किस्मत पलटी लेकिन थोड़ी-सी। बस स्टॉप से कोई 100 गज आगे ट्राफिक-सिग्नल था। और बस के वहाँ पहुँचने के एक सेकण्ड पहले ही बत्ती लाल हो चुकी थी। एडी किसी तरह बस तक पहुँचा और घिसटते हुए ड्राइवर के दरवाज़े तक आ गया। थकान-कमज़ोरी के मारे उसने दरवाज़ा खटखटाया भी नहीं। उसने बस नम आँखों से ड्राइवर को देखा और घुटनों के बल गिर गया। वह बुरी तरह हाँफ रहा था। अचानक ड्राइवर को एक बात याद हो आई – एक बहुत पुरानी बात। उस समय से भी पुरानी जब वह बस-ड्राइवर बनना चाहता था। तब की जब वह ईश्वर बनना चाहता था। वो एक उदासी भरी याद थी। क्योंकि वह ईश्वर नहीं बन पाया था। पर बात खुशी की भी थी क्योंकि वह बस-ड्राइवर बन गया था। जो उसकी दूसरी इच्छा थी। अचानक ड्राइवर को याद आया कि एक बार उसने खुद से वादा किया था कि अगर वो ईश्वर बन गया तो वह रहमदिल और मेहरबान होगा। और अपने सारे बन्दों की बात सुनेगा। इसलिए जब उसने अपनी ऊँची सीट से एडी को सड़क पर घुटनों के बल बैठे देखा, तो खुद को रोक नहीं सका। अपने उसूल और हिसाब-किताब को किनारे रख उसने दरवाज़ा खोल दिया। एडी बस में बैठ गया। वह इतनी ज़ोर-से हाँफ रहा था कि उसने शुक्रिया तक नहीं कहा।

अब अच्छा तो यही होगा कि इसे यहीं तक पढ़ा जाए। क्योंकि एडी भले ही डॉल्फिनेरियम समय पर पहुँच गया हो पर खुशी वहाँ नहीं थी। खुशी का पहले से ही एक दोस्त था जिसे वो प्यार करती थी। पर वो इतनी प्यारी थी कि यह बात एडी को बता न सकी। उसे यही ठीक लगा कि वो एडी से मिलने न जाए। इससे वो खुद समझ जाएगा। जिस बेंच पर मिलना तय हुआ था एडी ने वहाँ कोई दो घण्टे तक इन्तज़ार किया। बैठे-बैठे वह तमाम उदास, हताश बातें सोचता रहा। इन्हीं ख्यालों में डूबे हुए उसने डूबते सूरज को देखा। वो बहुत सुन्दर लग रहा था। उसने सोचा कि आज उसके हाथ-पाँव बहुत दर्द करेंगे। लौटते वक्त जब वह घर पहुँचने के लिए बेताब हो रहा था उसने उसी बस को कुछ दूरी पर देखा। बस स्टॉप पर लोग उतर रहे थे। वह जानता था कि अगर उसमें दौड़ लगाने की हिम्मत बची भी होती तब भी वह बस को पकड़ नहीं पाता। वह धीरे-धीरे ही चलता रहा। उसका पोर-पोर दुख रहा था। पर जब वो किसी तरह बस स्टॉप पर पहुँचा तो देखा बस अभी भी वहीं है, उसका इन्तज़ार कर रही है। यात्री बस चलाने के लिए खूब चिल्ला-चोट मचा रहे थे पर बावजूद इसके ड्राइवर ने एडी का इन्तज़ार किया। और जब तक वह सीट पर बैठा नहीं, उसने एक्सिलेटर नहीं दबाया। जब बस चलने लगी तो उसने पीछे बैठे एडी को शीशे में देखा और एक उदास-सी पलक झपका दी। इससे सब कुछ सहन करना एडी के लिए थोड़ा आसान हो गया। चकमक

अनुवाद- वर्षा शुक्ला

चण्डीगढ़ का वो अफ्रीका, युरोप और चीन

मीता वशिष्ठ

70 के दशक की बात है। उन दिनों चण्डीगढ के सेक्टर 11 के करीबन हर घर में विदेशी छात्र किराए से रहते थे। इनमें से ज़्यादातर केन्या और नाइजीरिया से थे और घरों की गैरेज के ऊपर के कमरों में रहते थे।

मुझे याद नहीं कि इनमें लड़कियाँ भी होती थीं कि नहीं। ज़्यादातर लड़के होते थे। हालाँकि वे 18-19 साल से ज़्यादा के नहीं रहे होंगे पर हम बच्चों के लिए तो बड़े ही थे। वो औरों से बहुत अलग थे। उनके पास हमारे साथ गलियों में बैडमिंटन खेलने का समय इफरात में होता। वो अपने घरों से आई चिट्ठियों के टिकिट बड़े ख्याल से निकाल को हमें देते थे। अकसर तो चिट्ठियाँ खोलने से भी पहले वे टिकिट निकाल लेते थे। इतना ही नहीं टिकिट मैं लूँ कि तू ले कि वो ले जैसे हमारे हज़ारों झगड़े भी वहीं निपटाते। पक्के दोस्त कैसे दुश्मन बन गए जैसी हमारी तमाम शिकायतों को बड़ी तसल्ली से सुनते और लूट के लाई कच्ची केरियों का बँटवारा भी वही करवाते। एक तरह से वो - भाई, तुम्हारे लिए हमेशा खड़ा है - जैसे थे। हम उनके कमरों में कभी भी आ-जा सकते थे। उनकी किताबें देख-पढ़ सकते थे। और हाँ, उनके गिटार पर अपनी उँगलियाँ फिरा सकते थे। उनमें से हर किसी के पास गिटार ज़रूर होता। और जब गिटार के तारों पर अपनी उँगलियाँ थिरकाते हुए वो अजीब-अजीब-सी आवाज़ों में गाने गाते तो सच कहूँ हमारे आपसी बचकाना लड़ाई-झगड़े सब उसमें गुमा जाते। बाद में हम मज़े-मज़े में उन आवाज़ों की खूब नकल उतारते। इसमें थोड़ा-बहुत उनका मज़ाक भी उड़ता पर वो मस्ती से भरा ही होता।

हमारी माँओं को भी उनका बड़ा सहारा था। सर्दियों की दोपहर घर के पीछे के बगीचे में वो माँ के साथ कभी गाजर, शलगम, गोभी कतरते दिखते कभी आचार के लिए उन्हें धूप में बिछाते नज़र आते।

वो परिवार जैसे ही थे। पर बच्चों और औरतों वाले घर में एक अकहा-सा लिहाज़ रहता। दिन में जब घर के आदमी काम से बाहर होते, वो घर के भीतर पाँव तक न रखते। घर के पिछवाड़े का बगीचा उनकी लक्ष्मणरेखा होता। वो उसे पार कर आँगन तक न आते। वैसे भी सर्दियों में सारे काम तो वहीं पर होते। नाश्ते से लेकर खाने तक, बाल सुखाने से लेकर दोपहर की झपकी तक यहीं ली जाती। हमारा होमवर्क और रात के खाने के लिए सब्ज़ियों की कटाई भी यहीं होती।

वो दिन राजेश खन्ना के नाम थे। जैसे ही राजेश खन्ना के गाने की पहली लाइन बजती सारी लड़कियाँ अपने हाथ के छोड़-छोड़कर रेडियो से जा चिपकतीं। रेडियो के सबसे पास जाने की पागल होड़ मच जाती। जब तक गाना बजता, ये आलम बना रहता। वैसे मुझे धर्मेन्द्र ज़्यादा पसन्द था। पर मेरी सबसे पक्की सहेली की बड़ी बहन और उसकी सभी सहेलियाँ राजेश खन्ना पर जान छिड़कती थीं। ऐसे में हमारे पास कोई विकल्प था? हम धर्मेन्द्र के पोस्ट कार्ड को राजेश खन्ना के पोस्ट कार्ड से बदलने की जुगाड़ में रहते। (उन दिनों पोस्टर की बजाय पोस्टकार्ड ही चलते थे।)। धूप के चश्मे को नाक की नोक पर टिकाए, गले में स्कार्फ लटकाए मोटरसाइकिल पर बड़े जानलेवा अन्दाज़ में बैठे राजेश खन्ना का पोस्टकार्ड हमारी खास कमाई होता। हम अपने अफ्रीकी भैयाओं से शर्त लगाते कि बड़े होकर हम ही उससे शादी करेंगे। इन पोस्टकार्ड को इकट्ठा करने में उनकी भी बड़ी मेहनत होती।

दुनिया में अमन-चैन? अचानक ही यह कितनी सहज सम्भव चीज़ लगने लगती है।

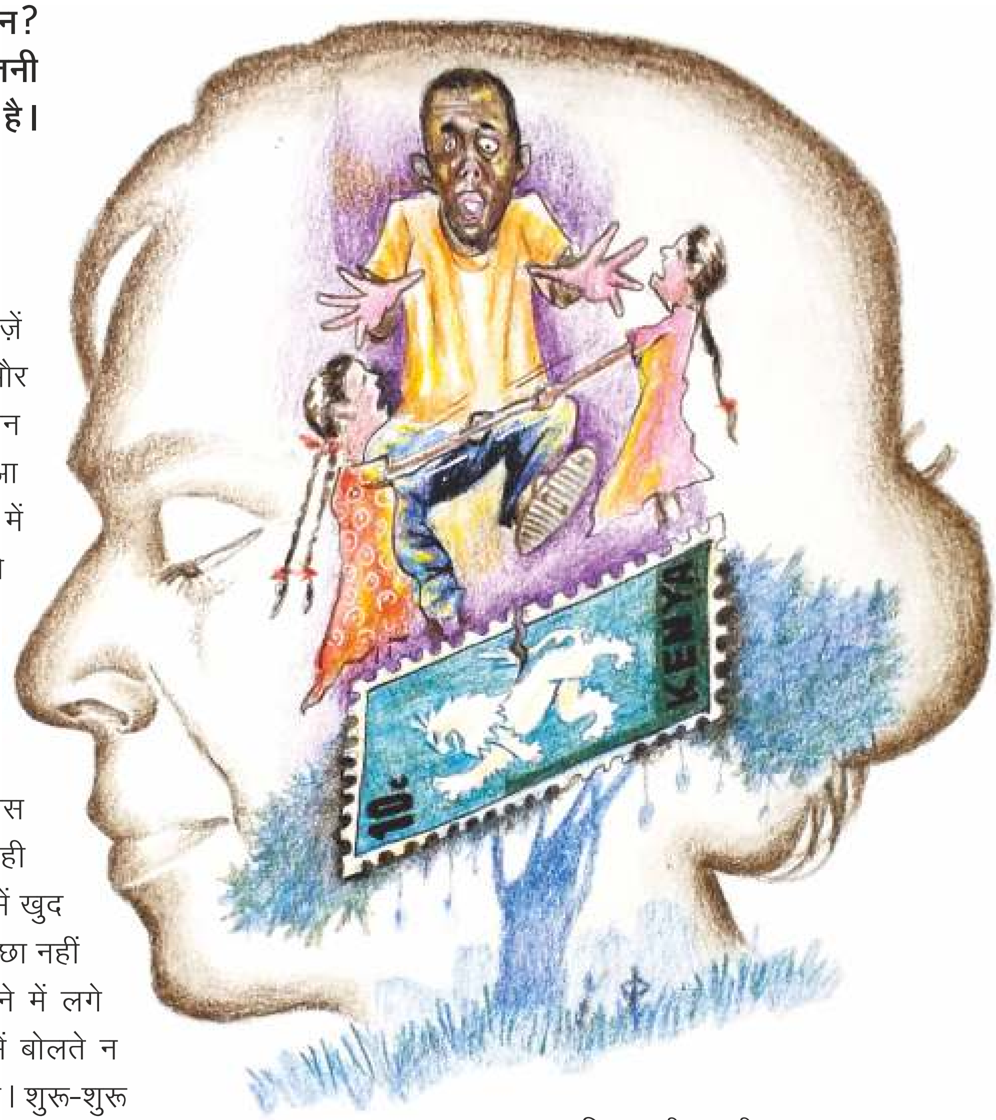

चित्रः हबीब अली

सेक्टर 11 के बाज़ार में बस दो ही चीज़ें थी - एक, काकू की मिठाई की दुकान और दूसरा, हाल में खाली हुआ घर। एक दिन उस घर में एक चीनी परिवार रहने आ गया। इससे पूरे सेक्टर की बच्चा पार्टी में खुशी की लहर दौड़ गई। उनके दो बच्चे हमारी ही उम्र के थे। अब तो और मज़ा था। एक दिन हम सब जमा हुए। और सोच-विचार हुआ कि उन्हें हमारे खेमे में शामिल होने दिया जाए या नहीं। इससे ज़्यादा रोमाँच और सत्ता का आभास हमें पहले कभी नहीं हुआ था। पर थोड़े ही दिनों में साफ हो गया कि इन नए बच्चों में खुद से बढ़कर हमसे दोस्ती करने की कोई इच्छा नहीं है। वो अपने माँ-पापा के संग घर जमाने में लगे रहते। और ऊपर से न तो वो अँग्रेज़ी में बोलते न हिन्दी में। तो हम उन पर नज़र रखने लगे। शुरू-शुरू में चोरी-छिपे, फिर खुले आम। हम रविवार की हर सुबह उनके गेट के आसपास चक्कर लगाने लगे। और एक दिन उन्होंने हमें घर में बुला ही लिया। उनकी माँ थोड़ी-बहुत अँग्रेज़ी बोलती थीं। दूसरी माँओं की तरह वो भी बच्चों को लेकर मीनमेख निकालती रहतीं। उन्होंने हमें चीनी नूडल का सूप पिलाया। बड़ा ही स्वादिष्ट। इतना कि अगले इतवार हम फिर हाज़िर हो गए। फिर से सूप की फरमाइश लेकर। लेकिन वो हमारे और अपने बच्चों के बीच दोस्ती नहीं करा पाईं। पर जल्दी ही हमारी माँओं ने कभी सूप, कभी नूडल्स कभी किसी और चीनी डिश की रेसेपी के लिए उनके घर जाना शुरू कर दिया। ये वो दिन थे जब चण्डीगढ़ में चीनी स्वाद खाने लोगों की ज़बान पर चढ़ा नहीं था।

शुरुआत तो किसी खास डिश की रेसेपी के लेन-देन से हुई। पर फिर किसी मेहमान के आने पर पूरे खाने का आर्डर दिया जाने लगा। जल्दी ही उस कोनेवाले घर ने अपने बरामदे में एक टेबिल लगा ली। और इस तरह चण्डीगढ़ के पहले चीनी रेस्टोरेंट ने जन्म लिया। अब चीनी खाना घर में आने लगा कटोरों में नहीं बल्कि पॉलीथिन बैग में। इस तरह चीनी खाने और उस चीनी परिवार की सेक्टर 11 में खासमखास जगह बन गई। हम मन ही मन पूरी शिद्दत से दुआ करते कि वो किसी दूसरे सेक्टर न चले जाएँ। *(शेष भाग पेज 21 पर)*

दिल्ली में उनींदे

गगन गिल

फरवरी की शाम। वर्ष 1994। रोज़ जैसा दिन है। हवा में ठण्डक है। मैं अभी-अभी "स्वाति" से साहित्य अकादमी के कुछ प्रकाशन खरीद कर इस सड़क पर पहुँची हूँ। मन्दिर मार्ग पर। सड़क सुनसान है। बिरला मन्दिर के बाहर दो-एक ऑटो खड़े हैं। एक से पूछती हूँ, "चलना है?" वह कहता है, "चलिए।" मैं गिरती-पड़ती अपनी किताबें सीट पर जमाती हूँ। उसे चलने में देर है। उसके शरीर की हरकत में एक अजीब-सी थकान है। वह अपनी सीट के नीचे से एक गन्दा, उधड़ा, आधी बाँह का भूरा स्वेटर निकालकर पहन रहा है। धीरे-धीरे।

अभी मेरा ध्यान उसके चेहरे की तरफ नहीं गया। उसे मैं बाद में देखूँगी। ऑटो के ड्राइविंग आइने में। जिसमें उसकी आँखें और भी धँसी दिखेंगी, और हड्डियाँ और भी उभरीं। उसके चेहरे पर तब भूख और बीमारी के अलावा एक और भी चीज़ दिखेगी। अभी मुझे उस चीज़ का नाम नहीं मालूम। आने वाले दिनों में मैं उसके लिए बिलकुल सटीक कोई शब्द ढूँढ पाऊँगी। लेकिन अभी नहीं। यह बाद में होगा।

आखिर वह चलता है। ऑटो चलते ही उसकी खाँसी शुरू हो जाती है। मालूम नहीं, उसे ठण्ड लग रही है या हम ट्रैफिक की दमघोंट के बीचों-बीच आ गए हैं। हमने दो मोड़ पार कर लिए हैं, लेकिन न उसकी खाँसी रुकती है, न उसका ऑटो। इसके बाद ही मैं उसका चेहरा देखती हूँ। ड्राइविंग आइने में।

"यह खाँसी कब से है?" मैं पीछे बैठी पूछती हूँ।

"होगी कोई 10-12 साल से।"

"किसी डॉक्टर को नहीं दिखाया?"

"पैसा भी तो चाहिए उसके लिए।"

हमारी बातचीत टूट जाती है। सड़क के दोनों ओर ट्रैफिक जा रहा है। सारी दुनिया काम-व्यापार में लगी है। रुपए का सिक्का सब को दौड़ा रहा है। किसी के हिस्से कम, किसी के हिस्से ज़्यादा। उसका दम फिर फूल रहा है।

"आप रहते कहाँ हैं?" मैं बिल-बोर्ड पढ़ते-पढ़ते पूछती हूँ।

"इसी ऑटो में।"

"इस ऑटो में?" इस बार मैं उसे आईने में देखते हुए पूछती हूँ।

"हाँ।" वह पहली बार जवाब में आईने में देखता है। ज्यों घर आए मेहमान को देख रहा हो। अभी मुझे उसके उत्तर का पूरा अर्थ समझ में नहीं आया। मैंने इससे पहले कभी किसी बेघर के बारे में नहीं सोचा था। कभी वास्ता ही नहीं पड़ा। घर का न होना क्या होता है, एक बेफिक्र नींद का न मिलना किसी की आत्मा में कहाँ सुराख कर सकता है – अभी मुझे कुछ नहीं मालूम।

"आप दिल्ली में कब आए थे?"

"1979 में।"

"आपका मतलब आप तब से सड़क पर ही हैं?"

"हाँ।"

यानी उसे बिना सोए 14 वर्ष बीत गए। मैं उसे देख कर यह तो बता सकती हूँ कि वह गरीब है, कि उसके पास पूरे कपड़े नहीं हैं, कि वह किसी भी ऐसे व्यक्ति जैसा लगता है, जो फाके का अभ्यस्त है। लेकिन बेघर? बेघर तो वह कहीं से नहीं लगता।

"आपका मतलब आप इस 3 फीट लम्बी पिछली सीट पर सोते हैं?"

"हाँ।"

"और आपकी चीज़ें?"

"उन पर आप बैठी हैं।"

वह बताता है कि मेरी सीट के नीचे उसका बक्सा है, जिसमें एक कम्बल है। एक जोड़ी कपड़े हैं और एक कटोरा है। कटोरा पानी पीने के काम आता है और खाना रखने के भी।

"आप खाना कहाँ खाते हैं?"

"किसी भी ढाबे में।"

"और बाथरूम के लिए?"

"पब्लिक शौचालय हैं। नहा मैं कहीं भी लेता हूँ। सड़क के किनारे किसी भी नल पर। अकसर पंचकुइयाँ रोड पर नहाता हूँ। इतवार के दिन। वह जगह ठीक है। वहाँ मेरे जैसे कई लोग जाते हैं।"

मेरा घर आ गया है। उसका मीटर देखती हूँ, तो शक होता है कि कहीं रास्ते में अटक तो नहीं गया था। उससे पूछती हूँ, "आपका मीटर ठीक तो है न?" वह कहता है, "जी बिलकुल ठीक। पिछले छह सालों से एक पैसे का फर्क नहीं।"

उतरते-उतरते उससे पूछती हूँ, "सुनिए क्या हम कल किसी समय मिल सकते हैं?"

"क्यों?" वह जानना चाहता है।

"मैं आपके बारे में सब जानना चाहती हूँ।"

"उससे कुछ होगा?"

"क्या?"

"क्या उसके बाद सरकार मेरे लिए कुछ करेगी?"

चित्रः चन्द्रमोहन कुलकर्णी

"यह तो कह नहीं सकती। लेकिन अगर आप बात करने के लिए हाँ करें, तो कम-से-कम आम लोगों को आपके जीवन के बारे में पता चलेगा।"

"और आपको क्या मिलेगा?"

"मैं अपना काम करूँगी। मैं रेडियो के लिए प्रोग्राम बना रही हूँ।"

"ठीक है। मैं सब समझ रहा हूँ। आपके पास भी तो ताकत नहीं है। आप भी मेरे जैसी हैं। मैं रोड पर सवारी ढूँढता हूँ, और आप कहानी। अगर मेरी कहानी सुनने से आपका काम होता है तो मैं आ जाऊँगा।"

"कितने बजे?"

"सुबह दस बजे?"

"बहुत अच्छा।"

– – – –

अगले दिन वह आता है। मेरे घर। करीब साढ़े पाँच फीट ऊँची उसकी दुबली काया बड़े कमरे के दरवाज़े पर ही सिकुड़ जाती है। वह सोफा पर नहीं, फर्श पर बैठ जाता है।

"मुझे यहीं बैठने दीजिए। मैं आपका सोफा गन्दा नहीं करना चाहता।"

मैं कल की अपनी जान पहचान के नाते उसे दोस्ताना मुस्कान देती हूँ। उसके शरीर में, चहरे पर, हाथ-पाँव में इतनी सारी नीली रगें हैं – मैंने पहले नहीं देखा था। वह बैठता है तो जैसे उसकी सारी भूख-प्यास उसके साथ बैठ जाती है।

"कुछ चाय वगैरह लेंगे?"

यह कुछ झिझकता, कुछ शर्माता है। सैंडो मेरे हारवर्ड के दिनों का साथी, अपना टेपरिकॉर्डर लगा रहा है। लैटिन अमरीका के देशों के बाद यह पहला मौका है, जब उसका वास्ता भारतीय गरीबी से पड़ रहा है। हम अमरीका के नेशनल पब्लिक रेडियो के लिए अन्न और भूख विषय पर प्रोग्राम बना रहे थे कि मुझे यह ऑटो ड्राइवर टकरा गया। अब हम उसकी नींद के बारे में जानना चाहते हैं, असम्भव नींद के बारे में। मैं चाय बना लाती हूँ ताकि हम शुरुआती अटपटेपन से निकल सकें।

"नाम क्या है आपका?"

"राजा राम।"

"घर कहाँ है?"

"उन्नाव, यू.पी में।"

"ऑटो चलाना कैसे शुरू किया?"

"पहले आठ साल तक तो रिक्शा चलाता रहा। चाँदनी चौक में। फिर एक बहुत दयालु, अमीर आदमी से मुलाकात हो गई। डेढ़ साल मैंने उसकी सेवा की। उसे रोज़ ले जाता था। एक पैसा नहीं लिया। उसने बदले में मुझे यह पुराना ऑटो ले दिया, जिसे अब चलाता हूँ।"

"उससे पहले क्या करते थे?"

"गाँव में मज़दूरी करता था, खेतों में। घर हमारा बारिशों में ढह गया था। दोबारा मैं उसे बनवा नहीं पाया। भुखमरी थी। एक दिन मैंने तय किया कि दिल्ली चलें।"

"गाँव में कोई ज़मीन नहीं थी?"

"नहीं, हमारे पास कभी ज़मीन नहीं रही, पुश्तों में। मेरा बाप अँधा हो गया था, जब मैं 14-15 साल का था। और गाँव में मुझे कोई काम नहीं मिलता था। कोई दूसरा चारा नहीं था।"

"लेकिन दिल्ली क्यों आना चाहते थे?"

"गाँव में मैं सिर पर बोझा ढोता था। एक रात मैंने सोचा, मेरे सिर पर छत तो वैसे भी नहीं है। क्या फर्क पड़ता है कि मैं गाँव के खुले में सोऊँ या दिल्ली की सड़क पर? सो पहले मैं कानपुर गया, फिर वहाँ से दिल्ली।"

"अब खुश हैं यहाँ पर?"

"पेट भरने आया था। मुझे खुशी है कि वह भर लेता हूँ। और ऑटो चलाता हूँ। सिर पर बोझ उठाने से तो अच्छा ही है। नहीं?"

मुझे नहीं मालूम, बोझा ढोते हुए यह संसार कैसा दीखता है, सड़क पर सोते हुए कैसा, ऑटो में रहते हुए कैसा। मेरे पास उसके प्रश्न का कोई उत्तर नहीं।

"ऑटो चलाते हुए कैसा लगता है?"

"ऑटो बहुत मुश्किल सवारी है। सारा वक्त खड़खड़ करती है। जवान ड्राइवरों के लिए तो ठीक है, मेरे जैसों के लिए नहीं। आपको पता है, ऑटो चलाते हुए कोई मर भी सकता है? और फिर सब तरफ से धुआँ। मुझे तो तब अच्छा लगता है, जब कोई ग्राहक किसी खुली तरफ जा रहा हो...।"

"आपको यह खाँसी...क्या धुएँ के कारण?"

"पता नहीं, किस कारण। शायद भगवान की सज़ा हो। मैं तो बस यही जानता हूँ कि मैं जब धुएँ में साँस लेता हूँ, मेरा अन्दर तक सिकुड़ जाता है।"

"उम्र क्या होगी आपकी?"

"क्या पता? शायद पचास साल। बस इतना याद है, सन् 62 में मैं पाँचवीं में पढ़ता था। और स्कूल जाना मैंने 8 की उम्र से शुरू किया था।"

मैं हिसाब लगाती हूँ। मेरे हिसाब से उसे 40 के ऊपर नहीं होना चाहिए। तब क्या उसकी थकान के सब साल उसकी उम्र में जुड़ गए हैं?

"आपके लिए एक अच्छा दिन क्या होता है?"

अच्छा दिन कहते ही मेरे मुँह में पानी भर आता है। वर्षा में धुले हरे पत्ते, भीगी-भीगी हवा, अधगीली सड़कें – सब आँखों के सामने घूम जाते हैं।

"मुझे नहीं मालूम अच्छा दिन क्या होता है। दो वक्त की रोटी मिल जाए गनीमत है।"

यह मेरा पहला पाठ है। हम एक ही शहर में रहते हुए दो अलग मौसमों में रहते हैं। अन्न और भूख के मौसम में। घर और बेघरों के मौसम में।

"अपने जीवन की कोई दिलचस्प घटना याद है आपको?"

"मेरे जीवन में क्या है? ऐसा कुछ नहीं, जिसे याद कर सकूँ।"

ऑटो में आप सो नहीं सकते। मैं 2-3 घण्टे सोता हूँ। लेकिन सीधा लेट नहीं सकता, करवट नहीं ले सकता।

"आपने कल कहा था, आप ऑटो में रहते हैं?"

"हाँ, हालाँकि मेरे लाइसेंस में कनॉट प्लेस की एक दुकान का पता लिखा है। लेकिन मैं वहाँ सोता नहीं, सोता मैं ऑटो में ही हूँ। खाना ढाबे में। दस-पन्द्रह दिन में कभी एक बार रोड साइड में रुककर नहाता हूँ। वह छुट्टी का दिन होता है। कपड़े धोता हूँ, धूप में सुखाता हूँ, और जब सूख जाते हैं, तो उन्हें पहन वापस रोड पर आ जाता हूँ।"

"ऑटो में सोते हुए कैसा लगता है?"

"ऑटो में आप सो नहीं सकते। मैं 2-3 घण्टे सोता हूँ। लेकिन सीधा लेट नहीं सकता, करवट नहीं ले सकता।"

"कभी किसी पार्क में जाकर सोने की इच्छा होती है? या सड़क किनारे ही?"

"नहीं। अपना ऑटो ऐसे छोड़कर कैसे जा सकता हूँ?"

"तब तो आपको अकसर झपकियाँ आती होंगी?"

"मेरा शरीर इतने अर्से से जगा हुआ है कि मैं अब ज़्यादा देर तक सो नहीं पाता। और अगर किसी

“आप ऑटो लेती हैं, मैं आपको पन्द्रह-बीस मिनट में पहुँचा देता हूँ। फिर मैं इन्तज़ार करता हूँ। कभी आधा घण्टा, कभी एक घण्टा। कभी पूरा दिन।”

अच्छी रात नींद आ भी जाए, तो पुलिस आ जाती है। वे मुझे उठा देते हैं और कहते हैं, दूसरी जगह जाकर सोओ। ऐसी रातें बड़ी मुश्किल से कटती हैं। रात भर एक जगह से दूसरी जगह भटकते रहना पड़ता है।”

“रात को सवारी बिठाते हैं?”

“अगर कोई आ जाता है और मुझमें शक्ति होती है, तो मैं चला जाता हूँ।”

उसके 14 वर्षों का उनींदा, उस उनींदे में फैली दिल्ली की सड़कें, हम सबके 14 वर्षों की आरामभरी रातें – जैसे किसी खुली गुदड़ी की तरह बिखर जाती हैं। जैसे उसकी उनींदे के पाप में हम सबके आराम का हाथ हो।

“महीने में कितनी कमाई हो जाती होगी?”

“कुछ तय नहीं है। कभी एक घण्टे में तीन सवारियाँ मिल जाती हैं और कभी पूरे दिन में एक भी नहीं...अब देखिए, मेरी कमाई आप पर निर्भर करती है। आप घर से निकलेंगी, ऑटो लेंगी, तो मेरा दिन अच्छा होगा। लेकिन अगर आप घर से नहीं निकलतीं, तो मैं सड़क पर इन्तज़ार करता रहूँगा। वैसे मेरा खयाल है, रोज़ के सौ रुपए हो ही जाते होंगे। खर्चा-पानी निकालकर पच्चीस तो बच ही जाते हैं।”

“ कुछ जमा कर पाते हैं?”

“ हाँ, कभी 10 रु, कभी 5 रु, और कभी अपनी जमा रकम में से ही खाना पड़ता है।”

“ अपने पैसे कहाँ रखते हैं?”

“ एक-दो महीने तो अपने पास ही रखता हूँ। फिर जब दो-तीन सौ रुपए हो जाते हैं, तो बैंक जाता हूँ। वह जिस आदमी का मैंने बताया था, उसने बैंक में मेरा खाता भी खुलवा दिया था।”

“इस समय कितनी बचत होगी आपकी?”

“पिछले सब सालों में कुल बारह हज़ार जमा किए थे। सब गाँव ले गया था ताकि चारदीवारी बनवा सकूँ। उसमें 11,000 खर्च हो गए। अब धीरे-धीरे कमरा भी बनवा लूँगा।”

“घर में पीछे कोई है?”

“नहीं।”

“फिर चारदीवारी का क्या फायदा?”

“अपने बुढ़ापे का भी तो सोचना है। नहीं? मैंने चारदीवारी बनवाई ताकि जब बूढ़ा हो जाऊँ, तो घर जा सकूँ। अब कम-से-कम चारदीवारी तो है।”

“उस पैसे से आप दिल्ली में कोई छोटी-मोटी जगह नहीं देख सकते थे?”

“दिल्ली मेरा घर तो नहीं है। हर वक्त मैं अपने गाँव के बारे में सोचता रहता हूँ। वहाँ मैं पैदा हुआ, वहीं मरना चाहता हूँ।”

“आपकी शादी नहीं हुई?”

“नहीं। जब मेरी शादी की उम्र थी, तब मैं सिर्फ 2-3 रुपए कमा पाता था, एक दिन में। बाप अँधा था। उन दो रुपयों में दो किलो आटा आता था। और उस दो किलो आटे में सिर्फ दो लोगों का गुज़र हो सकता था। तो मैं तभी जान गया था कि मेरे भाग्य में शादी नहीं है।”

“इसका दुख होता है क्या?”

“ अरे नहीं। मैं तो भाग्यवान समझता हूँ खुद को

कि मेरा कोई परिवार नहीं, कोई ज़िम्मेदारी नहीं। अगर तब मैंने शादी की होती तो मुझे अपने आप को भूखा रखना पड़ता ताकि मैं अपनी औरत का पेट भर सकूँ। और आप ही बताइए, एक औरत किस काम की है?"

भूखे आदमी के लिए, बेघर आदमी के लिए एक औरत किस काम की है? क्या किसी के पास इसका उत्तर है?

"क्या साइकिल-रिक्शा की बजाय ऑटो में ज़्यादा कमाई होती है?"

"कुल मिलाकर उतना ही पड़ता है। फर्क है, शारीरिक मेहनत में। रिक्शे में बहुत ज़ोर लगाना पड़ता है। उसके लिए खुराक चाहिए। ऑटो को पेट्रोल चाहिए। बचता दोनों में एक जितना ही है।"

"जब पहली बार ऑटो लिया, कैसा लगा था?"

"पहले दिन जब ऑटो लिया, मैंने सोचा, अब मैं जल्द ही अमीर होने वाला हूँ। इतने साल मैं किस्तें देता रहा, मरम्मत के पैसे भरता रहा। और जमा रकम में से खाता रहा। अमीर नहीं हो सका मैं।"

"सारा दिन जब आप ऑटो चलाते हैं, क्या सोचते रहते हैं?"

"मैं सारा दिन ऑटो कहाँ चलाता हूँ? मैं सिर्फ चार घण्टे ऑटो चलाता हूँ।"

"लेकिन अभी तो आपने कहा, आप सारा दिन रोड पर रहते हैं?"

"हाँ। वह सच है लेकिन आप चार घण्टे मेरी नींद के निकाल लीजिए। दो घण्टे रात में, दो घण्टे दिन में। आप देखिए, आप ऑटो लेती हैं, मैं आपको पन्द्रह-बीस मिनट में पहुँचा देता हूँ। फिर मैं इन्तज़ार करता हूँ। कभी आधा घण्टा, कभी एक घण्टा। कभी पूरा दिन।

"तो कितने घण्टे आप गाड़ी चलाते हैं?"

"चार घण्टे।"

"सोलह घण्टे मैं इन्तज़ार करता हूँ।"

"अच्छा तो – फिर आप क्या सोचते हैं, गाड़ी चलाते हुए?"

"जब चला रहा होता हूँ तो पैसे के बारे में सोचता हूँ। कि अब कुछ पैसा मिलेगा। और उसे मैं जो दूसरी सवारी से पैसा मिलेगा, उसमें जोड़ दूँगा...और फिर मैं देखता हूँ, कि मैं अपने गाँव जा रहा हूँ, घर बना रहा हूँ, परचून की दुकान खोल रहा हूँ...यह हर बार होता है, हर दिन।"

"और जब आप इन्तज़ार कर रहे होते हैं?"

"तब मैं सोचता हूँ, यह मेरे पिछले जन्मों के किए का फल है। इसलिए इस जन्म में मेरा कोई घर नहीं है, इसलिए मैं यहाँ सड़कों पर धक्के खा रहा हूँ...।"

"कभी अगले जन्म के बारे में सोचते हैं?"

"हाँ, मैं खुद से कहता हूँ, अगर मैंने इस जन्म में कोई पाप नहीं किया, अगर मैं ईमानदारी से कमाई करता रहा, तो शायद अगले जन्म में मेरी इतनी मुश्किल न हो। आपने देखा होगा,

चित्र : अतनु राय

मैंने भरसक अपना मीटर ठीक रखने की कोशिश की है। इसलिए नहीं कि पुलिस ज़ुर्माना करेगी तो कहाँ से भरूँगा। बल्कि इसलिए कि मैं ईश्वर से डरता हूँ...”

“कौन-से ईश्वर से?”

“भगवान राम से। मैं हर शाम बिरला मन्दिर जाता हूँ, पूजा के लिए। वहीं तो आप मिली थीं।”

“लेकिन वहाँ तो राम की कोई मूर्ति ही नहीं? वह तो राधा-कृष्ण का मन्दिर है।”

“हाँ, लेकिन भगवान विष्णु की मूर्ति तो है। भगवान राम विष्णु का ही अवतार हैं। हम हिन्दुओं को अपने भगवान तक पहुँचने के सब रास्ते मालूम हैं।”

“तो क्या कभी किसी सवारी से बेईमानी करने का विचार नहीं आया?”

“देखिए मैं जब पाँच साल का था, मेरी माँ गुज़र गईं। दो छोटी बहनें थीं – एक दो साल की, एक तीन साल की। फिर वे दोनों मर गईं। पन्द्रह का था जब मेरा बाप अँधा हो गया। तब

मैंने भरसक अपना मीटर ठीक रखने की कोशिश की है। इसलिए नहीं कि पुलिस ज़ुर्माना करेगी तो कहाँ से भरूँगा। बल्कि इसलिए कि मैं ईश्वर से डरता हूँ...”

मुझे लगा, यह ईश्वर की सज़ा है। तब मैंने अपने से कहा, मैं ईमानदारी से ही जिऊँगा, चाहे जो हो। तभी मैं उस पीड़ा और कष्ट से बच पाऊँगा।”

“क्या आपको ईश्वर में सचमुच विश्वास है?”

“हाँ, एक बार मैं आठ दिन तक भूखा रहा और मरा नहीं। आपका क्या विचार है, यदि ईश्वर न होता को क्या मैं बच सकता था?”

“आपका मतलब है आप यहाँ दिल्ली मैं आठ दिनों तक भूखे रहे थे?”

“हाँ, दिल्ली में। तब मैंने यह ऑटो अभी लिया ही था। सब पैसे खर्च हो गए थे। कि यह खराब हो गया। मेरे पास न इसकी मरम्मत के पैसे थे, न खाना खाने के। तब मैं आठ दिन तक पानी पीकर ज़िन्दा रहा।”

नुट हैम्सन के उपन्यास “भूख” का नायक क्या ऐसा ही रहा होगा? वह अपने मुँह में पत्थर रख कर घुमाता रहता था ताकि शरीर को भोजन का भ्रम बना रहे। उसने अपने मुँह में क्या रखा होगा? कौन-से सब्र का पत्थर?

“जिन सवारियों को आप ले जाते हैं, कभी उनके बारे में सोचते हैं?”

“मेरे पास किसी और के लिए सोचने की फ़ुर्सत कहाँ है? मेरी अपनी ज़िन्दगी इतनी सांसत में है।”

“इतने ट्रैफिक में गाड़ी चलाते हुए कैसा लगता है?”

“जब दफ्तर का समय होता है, तब सवारी पिछली सीट पर बैठी बाहर देखती रहती है जबकि हमें आजू-बाजू की गाड़ियों का ध्यान रखना होता है कि कहीं टच न हो जाए। लाल बत्ती होते ही मैं तनाव में आ जाता हूँ।

“क्या ऐसा करना मुश्किल है?”

“है भी और नहीं भी। अगर तुम्हारा ध्यान स्थिर है तो कोई दिक्कत नहीं, लेकिन ज़रा चूक हुई नहीं कि तुम मुसीबत में हो... सब से बड़ी मुश्किल धुएँ की है। जब दम घुट रहा हो, तब भी कोशिश यही रहती है कि आँखें खुली रहें, गाड़ी पर हाथों की पकड़ बराबर बनी रहे।”

“कभी सैलानी मिलते हैं?”

“हाँ, कभी, कभार। कहते हैं, हमें घुमाओ। चिड़ियाघर ले चलो

या लाल किला या बिरला मन्दिर। लेकिन वो मुझसे कभी सवाल नहीं पूछते। बात नहीं करते। इन आठ सालों में आप पहली हैं जिसने मुझसे बात की।"

"आपको मुझसे कुछ पूछना है?"

"मैं आपसे पूछनेवाला कौन होता हूँ। वैसे भी मैंने खुद को भगवान भरोसे छोड़ रखा है।"

"आपसे फिर कभी मिलना हो तो कहाँ?"

"हर शाम मैं बिरला मन्दिर जाता हूँ। करीब पाँच बजे। वहाँ करीब एक घण्टा रहता हूँ। वहाँ के ढाबे में चाय पीता हूँ। कभी गुज़र रही हों, तो वहाँ झाँक सकती हैं।"

इस तरह वह उठता है और चला जाता है। बेघर राजा। बेघर राम। मैं उसके माता-पिता के बारे में सोचती हूँ, जो उसके जन्म से बहुत खुश हुए होंगे। परिवार का पहला पुत्र। जब उन्होंने उसका नामकरण किया होगा तो कभी सोचा होगा कि उसका जीवन ऐसी विडम्बना में बीतेगा?

जब उसने कहा आप पहली हैं, जिसने मुझसे बात की – तो उसकी आवाज़ घरघराने लगी। यहाँ मेरे घर में। जब वह जाने की तैयारी कर रहा था, मैं तमाम तरह की योजनाएँ सोच रही थी, जिससे उसे कुछ राहत मिल सके। शायद मैं उसे किसी डॉक्टर के पास ले जा सकती हूँ, कि पता चले उसे बारह साल से यह खाँसी क्यों है? या उससे कहूँ कि वह चाहे तो मेरे घर के बाथरूम में गर्म पानी से नहा सकता है? या कुछ कपड़े दे दूँ?

लेकिन मेरा शरीर ऐसा जड़ हो गया था कि समय रहते मुझे कुछ नहीं सूझा। हर चीज़ उसके लिए कम लगी। निरर्थक लगी। मैंने उसे सिर्फ एक प्याला चाय दी। क्या यह "कहीं-नहीं" वाला घर था, जिसमें हम चाय पी रहे थे? क्या यह "कहीं-नहीं" वाले घर की चाय थी जो मैं उसे दे रही थी?

ज़्यादातर हिन्दू विश्वास करते हैं कि ईश्वर सोता रहता है। इसलिए वे जब मन्दिर जाते हैं, घण्टा बजाते हैं, ताकि भीतर खबर हो जाए। क्या राजा राम भी घण्टा बजाता होगा? क्या उसकी खबर ईश्वर को मिल जाती होगी। या यह भी तो हो सकता है वह खुद ही ईश्वर रहा हो – भेस बदलकर घूमता ईश्वर – जिससे कहीं-न-कहीं, कभी-न-कभी टकरा जाने की आकांक्षा हम सबको रहती है। वृक्ष में ईश्वर, तितली में ईश्वर, ब्राह्मण में, भिखारी में, हर चीज़ में ईश्वर। उसने कहा भी था – वह राजा राम है। क्या नहीं?

चण्डीगढ़ का वो
अफ्रीका, युरोप और चीन

(पेज 13 का शेष भाग)

फिर एक और खाली घर में एक परिवार आया। आदमी सिख था और उनकी पत्नी युरोपियन। हम बच्चों ने उन्हें नाम दिया श्रीमति भिण्डी। वो भिण्डी को इतनी अलग-अलग तरह से बनाती थीं कि यह नाम दिया जाना लाज़मी था। हमारी माँओं से बात करते हुए भी वो तबीयत से भिण्डी शब्द का प्रयोग करतीं। शायद इससे उन्हें सबसे घुलने-मिलने में आसानी हुई।

हाल में एक इंटरव्यू लेनेवाले ने मुझसे सवाल पूछा, "संस्कृति?" मेरे पास सोचने तक का समय नहीं था। मैं बोली, "संस्कृति के मायने मेरे लिए हैं..." मैं कुछ हकला रही थी। फिर बोली, "संस्कृति मेरे लिए खाना है। हम किस तरह खाना बनाते हैं, उसे कैसे परोसते हैं, किस तरह हम उसे दूसरों से साझा करते हैं.... बल्कि हम उसे कैसे दूसरों के साथ साझा करना चाहते हैं...।"

"क्या मैं इससे बेहतर कोई जवाब दे सकती थी?" मैं खुद से बाद में पूछती रही। नहीं। कुछ भी मुझे इतनी खुशी, इतना सुकून नहीं दे सकता था नहीं दे सकते था जो बचपन में उस – अफ्रीकी, युरोपियाई, चीनी – पड़ोस में रहते मिला। खुले दिल से इस कदर अपना बनाना, कितनी आसानी से जो जैसा है उसे वैसे ही स्वीकारना...चण्डीगढ़ का वो पड़ोस बहुत याद आता है।

दुनिया में अमन-चैन? अचानक ही यह कितनी सहज सम्भव चीज़ लगने लगती है।

रिकॉर्ड मैंने नहीं तोड़ा

शरद जोशी

वे धुँआधार क्रिकेट के दिन थे। सुबह जब हम खेलने उतरते, कोई नहीं जानता था कि क्या होगा? किसकी खिड़की का काँच फूटेगा, किसके कन्धे पर गेंद लगेगी। क्रिकेट की उस अनिश्चितता से सारा मोहल्ला डरता था। एक अच्छे क्रिकेट के लिए सड़कें जितनी चौड़ी होनी चाहिए, उतनी नहीं थीं। उसका लाभ भी था कि सीमा छोटी थी। गावसकर जितनी दूरी तक गेंद फेंककर एक रन बटोर पाता है, उतने में हम चार बना लेते थे। विकेट के बीच दूरी भी कम थी, क्योंकि आखिर विकेटकीपर के लिए जगह निकालनी होती थी। वो क्या पीछे नाली में खड़ा रहता?

ब्रैडमैन का रिकॉर्ड मेरे द्वारा तोड़े जाने का सवाल ही नहीं था। एक तो हमारे मोहल्ले की टीम में या स्कूल की टीम में स्कोर याद रखने का रिवाज़ ही नहीं था। मुझे ही याद रखना पड़ता था कि मैंने बुधवार को कितने रन बनाए और गुरुवार को कितने बनाए। आँकड़ों की डींग हाँकने की कोशिश करता, तो कोई सुनता नहीं, या वे जवाब में अपने सुनाने लगते। अगर मैं सौ रन भी बना लूँ, तो एक माह बाद गवाह ढूँढना मुश्किल पड़ जाता कि मैंने बनाए थे। आरम्भिक संघर्ष के दिन थे। मेरे लिए तो वे ही अन्तिम सिद्ध हुए।

कारण दार्शनिक थे। ज़रा सोचिए कि अम्पायर, जो न्याय का प्रतीक है, उस तरफ खड़ा है, जिधर से आप पर प्रहार के लिए गेंद आ रही है। आपका साथी कहलानेवाला बल्लेबाज़ भी पास ही वहीं है। तटस्थ है। बल्ला हाथ में लिए सामने की ओर देखता मैं, जब मित्र, शत्रु और न्यायाधीश तीनों को अपने सामने खड़ा पाता, तो सोचता रह जाता। सारी सम्भावनाएँ क्षीण होने लगतीं। मुझे अम्पायर पर गुस्सा आने लगता। यह शख्स निरन्तर उस क्षण की प्रतिक्षा में है, जब मैं आउट होऊँ और यह निर्णायक उँगली उठाए। वह बॉलर को उकसा रहा है। क्या यह कभी भी मेरी ओर से नहीं सोचेगा? बॉलर से कभी नहीं कहेगा कि टाइट गेंदें न फेंके ताकि मैं एक-दो रन बना सकूँ? बीस-तीस मिनट से मैं सुरक्षात्मक खेल खेलकर अपना शरीर बचा रहा हूँ। यह कब तक चलेगा? यदि मुझे रन नहीं बनाने दिए जाने थे, तो मुझे यहाँ बुलाया क्यों गया? मुझे समूची व्यवस्था अपने विरुद्ध खड़ी जान पड़ती थी। मैं बल्ला हाथ में लिए तंत्र के सामने स्वयं को अकेला और असहाय अनुभव करता था।

अपनी निगाह में मैं एक अच्छा ओपनर था। पर अपने विषय में इस तरह की निगाह रखनेवाले हमारी टीम में लगभग सभी खिलाड़ी थे। सभी अपने आपको एक श्रेष्ठ ओपनर मानते थे। जब तक यह तय नहीं होता कि ओपन कौन करेगा, खेल शुरू नहीं हो पाता था। मेरी विशेषता यह थी कि रन चाहे न बनाऊँ, मगर एक बार ओपनर हो जाने के बाद मुझे क्लोज़ करना मुश्किल हो जाता था। क्रिकेट की भाषा में जिसे कहते हैं, एक छोर पर जमे रहना। मैं दोनों छोरों पर जमा रहता। सामनेवाले बल्लेबाज़ के सिंगल बन जाने के कारण मुझे छोर बदलना पड़ता था।

जीवन की ऊब तोड़ने के लिए क्रिकेट खेलता था, पर मैं वहाँ स्वयं को नई ऊब से

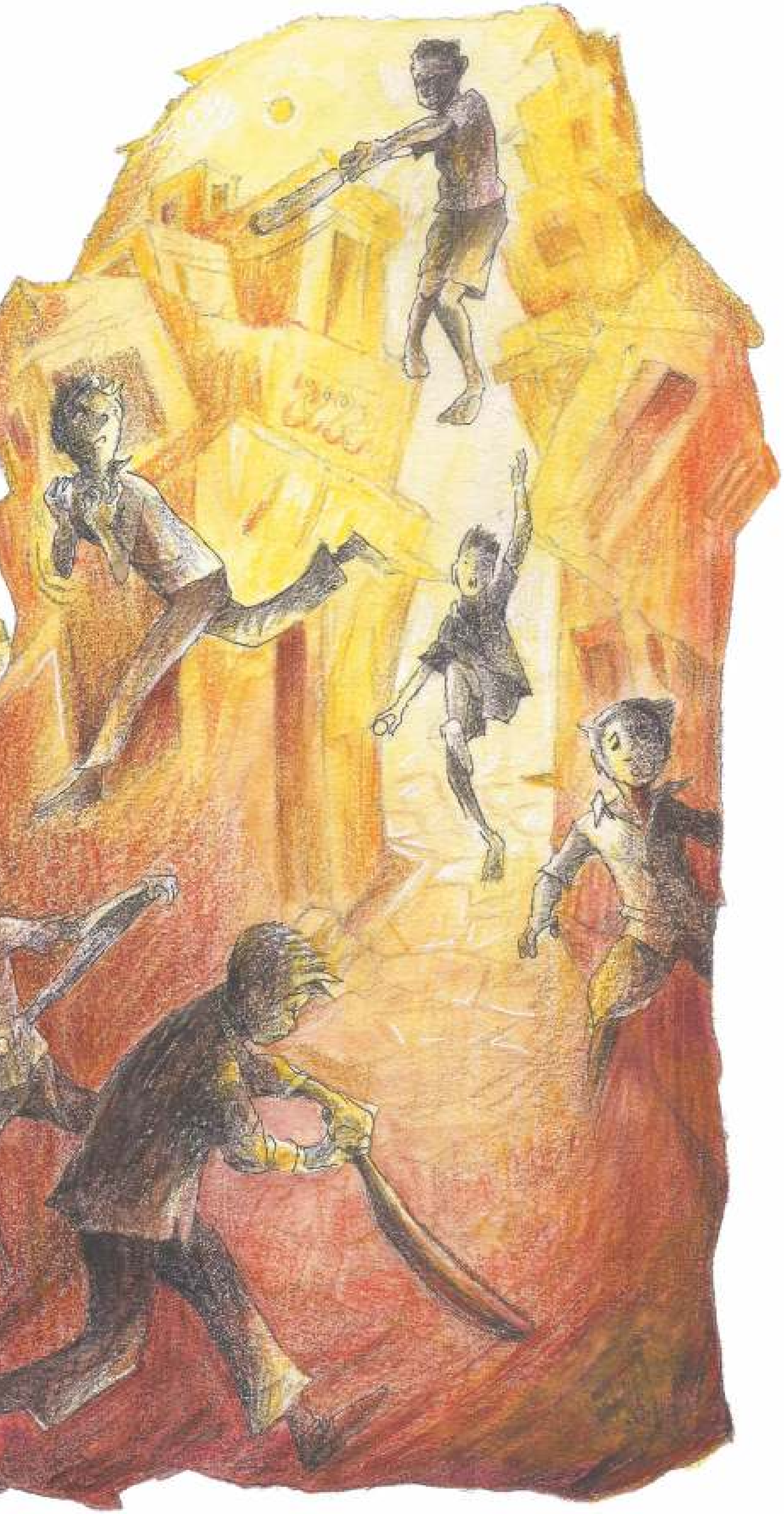

घिरा पाता था। लोगों का कहना था कि उस ऊब का कारण मैं स्वयं हूँ। हमारे एक क्रिकेट प्रशिक्षक थे, जो क्रिकेट के भविष्य और खासकर भारतीय क्रिकेट के भविष्य को लेकर बहुत चिन्तित रहते थे। एकान्त में और प्रायः सरेआम वे मुझे सलाह देते थे कि मुझे क्रिकेट खेलना छोड़ देना चाहिए। इसमें भारतीय क्रिकेट का हित तो है, मेरा भी हित है। उन्हें यह डर बहुत सताता था कि किसी दिन मेरे हाथ-पैर न टूट जाएँ। यह डर बल्ला हाथ में होने के बावजूद मुझे भी कम नहीं सताता था। वे मुझे सलाह देते थे कि मुझे शतरंज खेलना चाहिए। समस्या सामने आने पर अगली चाल सोचने के लिए शतरंज में काफी समय मिलता है। क्रिकेट में बॉल सामने आने पर उतना समय नीति-निर्णय करने और बल्ला मारने के लिए नहीं मिलता, जिसकी मुझे दरकार होती थी। मैं शतरंज का खिलाड़ी भी न हो सका, पर वह अलग लेख का विषय है, जिसमें मैं प्रेमचन्द की एक कहानी को दोषी पाता हूँ। फिलहाल प्रश्न यह है कि क्रिकेट में मैंने ब्रैडमैन का रिकॉर्ड क्यों नहीं तोड़ा?

सच यह है कि ब्रैडमैन ने कोई रिकॉर्ड बनाया है, इसकी जानकारी भी मुझे तभी हुई, जब गावसकर उसे तोड़ने के करीब पहुँचा। ब्रैडमैन ने जितनी इनिंग्स में वह

(शेष भाग पेज 56 पर)

चित्र : प्रशान्त सोनी

दूसरी किस्त

कन्धा तराजू - कँधारू

विनोद कुमार शुक्ल

रात का समय था। भैरा बजरंग होटल से निकल रहा था। दरवाज़ा खुला था और उसके कन्धे पर एक मोटी डाल थी। तब सड़क पर कोई नहीं था। उस समय भैरा के पास एक जंगली खरगोश दिखा था। चन्द्रमा के उजाले में उसकी आँख चमक जाती थी।

बाबूलाल होटल का एक पल्ले का दरवाज़ा बन्द था। बाकी हिस्सा एक मैदान की तरह खुला था। भैरा ने पल्ले को बाएँ हाथ से खटखटाया और दाहिने हाथ से वह मोटी डाल को थामे रखा। नौकर ने पल्ला खोला। नौकर के बड़े-बड़े बाल थे, जो उसके कन्धे पर बँटे थे। उसका कन्धा तराजू के पल्ले की तरह चौड़ा था। जब हवा नहीं चलती और बाल नहीं उड़ते तभी वह बाहर निकलता था। हवा से उड़कर एक बाल भी दूसरे कन्धे पर चला जाता तो उसका उस तरफ का कन्धा झुक जाता। सोने चाँदी को तौलनेवाले तराजू की तरह ठीक वज़न करने जैसा उसका कन्धा था। हवा थोड़ी भी चलती तो वह अपने उड़ते बालों से परेशान सुरक्षित जगह जाने लगता। तब उसके कन्धे जल्दी-जल्दी उठते-झुकते दिखाई देते।

बाबूलाल होटल का मीठा समोसा बाल्टी में भरकर उसके चौड़े कन्धे पर तौलने के लिए भरी बाल्टी लटका दी जाती। और एक-एक बाल को इस कन्धे से उस कन्धे में रख बाल्टी को तौला जाता। बाल्टियाँ इस तरह बनी थीं कि उसके कन्धे पर अटक जातीं। उसके कन्धे से कुछ भी तौल लिया जाता। तोला, आधा तोला भी। कुछ लोग शक करते जब हवा से बाल इधर-उधर हो जाते हैं और फूँक मारने से भी इधर-उधर होते हैं तो भारी वस्तुओं को कैसे तौला जा सकता है। यह सवाल बाबूलाल महराज से जब-तब पूछा जाता तब बाबूलाल हँसने लगते और कहते कि हमारा तौल सही है किसी से भी तौला लो।

खरगोश चले गए

भैरा, कन्धे से शाखा को उतारते-उतारते कन्धारू के कन्धे पर रख देता है। उसे कन्धारू कहा जाता। जैसे बुधवार को पैदा हुए तो बुधारू, मंगल तो मंगलू। पर इसका नाम कन्धारू था, जो कन्धा और तराजू के मेल से बना था।

जिस तरफ का कन्धा उसका झुकता उस तरफ का हाथ नीचे हो जाता। हाथ कितना नीचे होता इसका भी नाप होता। तौलने का यह काम बाबूलाल महराज के सामने होता। और वे एक छोटी पेंसिल से लिखते जाते।

बाबूलाल महराज को मालूम था कि भैरा आएगा। कन्धे पर मोटा लट्ठा जब धरा देखा तो कहा, "भैरा तुमने पेड़ काट डाला। महराज गुस्सा थे।"

भैरा, "नहीं, महराज पेड़ नहीं शाखा है।"

महराज फिर गुस्सा हुए। "शाखा क्यों काट डाली?"

भैरा, "नहीं! आँधी आई थी। यह शाखा टूटकर ज़मीन पर पड़ी थी।"

महराज जी, "इसे अपनी इस छोटी-सी चाकू से छीलना होगा।"

भैरा, "आपकी चाकू में बहुत धार है महराज। इस चाकू को पेड़ से छुआकर चारों तरफ घुमा दें तो थोड़ी देर में पेड़ गिर जाएगा।"

अबकी बार महराज जी बहुत गुस्सा हुए, "तुमने पेड़ काटने का उदाहरण दिया। मैं पेड़ नहीं काटता। पेड़ से जो टहनी, पत्ती तोड़ते हैं वह भी मुझे पसन्द

लगी। छिलवाने लाई। शायद पेंसिल निकल जाए और मेरे काम आए।"

"तुम पहली बार आई हो?" महराज ने कहा।

"हाँ! पर महराज जी मैंने आपको पहले देखा है।" कूना ने पलक झपकाते हुए कहा।

नहीं। मुझे गुस्सा आता है। फूल भी तोड़ना गलत है।"

शाखा के बीच एक ठोस काली नस थी। पतली टहनी में भी यह नस होती है पेंसिल की तरह। ताज़ी टहनी की पेंसिल से कागज़ में स्याही-सी लिखाती है। अगर टहनी सूखी हो तो वह पेंसिल की तरह लिखाती। अपने आप गिरी टहनी को वे छीलते। टहनी को सूँघकर वे जान जाते थे कि यह टहनी पेड़ से गिरी है या तोड़ी गई है। तथा टहनी छीलने योग्य है या नहीं। कोई छुपाकर टहनी नहीं छील सकता था। केवल बाबूलाल महराज पेंसिल-टहनी छीलेंगे यह अघोषित नियम था।

इस मोटी शाखा-पेंसिल से पकड़कर लिखा कैसे जाएगा! एक ऊँची चट्टान के ऊपर इसे छीलकर रख दिया जाना चाहिए और इसकी नोक की दिशा स्कूल की तरफ होनी चाहिए। स्कूल के पास इस पेड़ का जंगल था।

बाबूलाल महराज की दुकान का मीठा समोसा प्रसिद्ध था। समोसे के अन्दर जंगल की चिरौंजी को भर, तलकर गुड़ की चाशनी में डुबो दिया जाता। समोसा बनाने की बड़ी-बड़ी कड़ाहियाँ थीं। रोज़ इस्तेमाल होतीं। जंगल की सूखी टहनियों, पत्तों से दो बड़े चूल्हे जलाए जाते। ये जलते हुए चूल्हे रात में दूर से दिखाई देते।

कूना को पगडण्डी के रास्ते पर एक दिन एक टहनी मिली। उसे लगा पेंसिल-टहनी है। वह बाबूलाल होटल गई। बाबूलाल महराज बैठे थे। कूना ने हाथ उठाकर पेंसिल-टहनी दी। कहा, "इसे छीलना है।"

बाबूलाल महराज ने पेंसिल को देखा, सूँघा।

बाबूलाल, "पेंसिल तुम्हारी है या किसी दूसरे की?"

कूना ने कहा, "ये पेंसिल मेरी है या नहीं मुझे नहीं मालूम। एक पेड़ के नीचे मिली। मुझे पेंसिल-टहनी जैसी

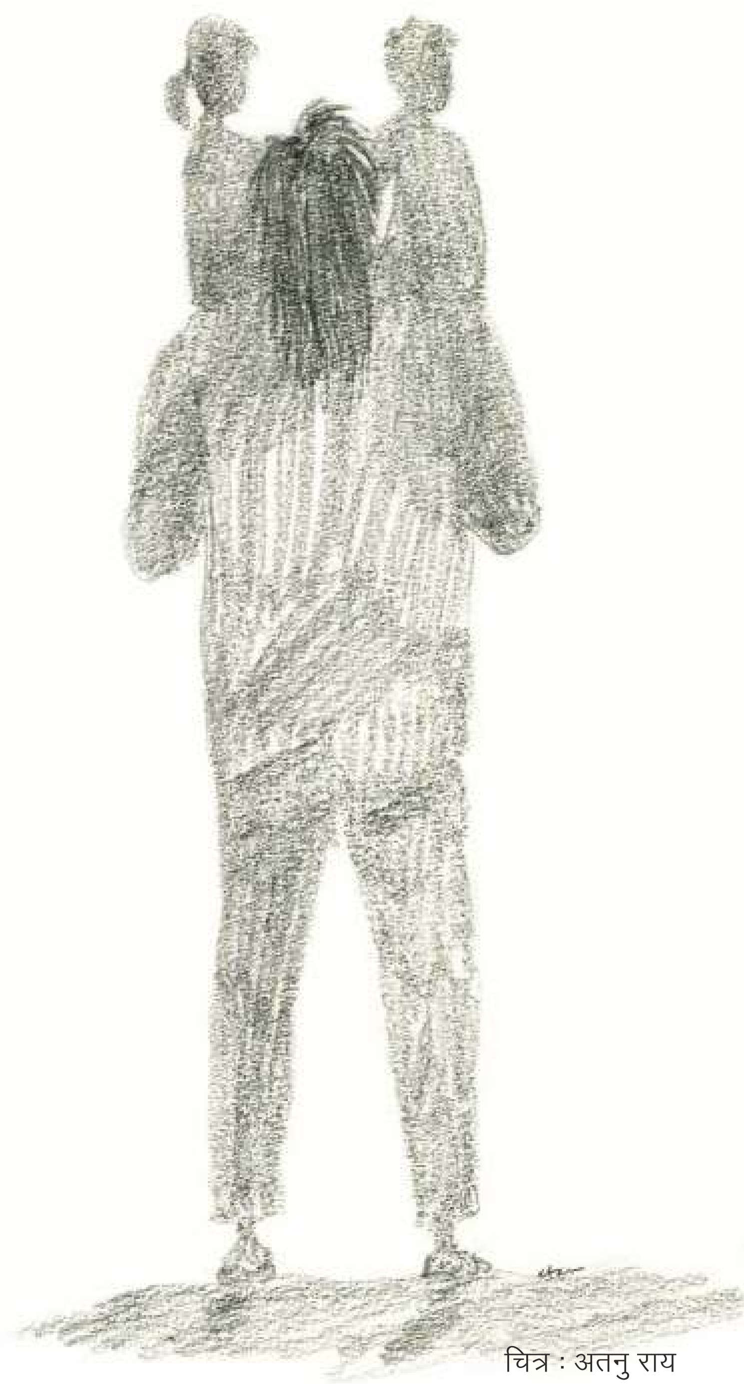

चित्र : अतनु राय

अपने खरगोश जैसे दोनों दाँतों में मुस्कराते हुए उन्होंने कहा, “मुझे नहीं जंगल में तुमने खरगोश देखा होगा।”

कूना ने बाबूलाल महराज को तब ध्यान से देखा। फिर कहा, “हाँ, जंगल में तो मैंने खरगोश देखे हैं। अभी रास्ते में भी एक खरगोश दिखा था।”

बाबूलाल महराज ने कहा, “मेरी होटल में भी खरगोश हैं। वो देखो। महराज जी ने इशारा किया।”

पर कूना, महराज जी के पीछे, दूर भूरे रंग के खरगोश को देख रही थी। कूना ने सिर उठाया तो महराज ने कहा, “मैंने जिधर तुम्हें खरगोश देखने के लिए इशारा किया था वो तो चले गए।”

तब कूना ने कहा, “मैंने देख लिया।”

महराज जी ने कहा, “कहाँ?”

कूना ने कहा, “आपके पीछे मैदान पर।”

जब महराज जी ने घूमकर देखा तब कूना ने कहा, “वे तो चले गए।”

“लो तुम्हारी पेंसिल छिल गई।”

“कब छीली मैंने तो देखी नहीं।” कूना ने आश्चर्य से कहा।

महराज जी ने कहा, “तुम यह छिली हुई पेंसिल देख लो। जब खरगोश देख रही थी तब मैंने पेंसिल को छील लिया था। और मैं बिना देखे पेंसिल छील सकता हूँ।”

महराज ने इसके बाद कूना के सामने कागज़ का एक टुकड़ा रखा और कहा, “इस छिली पेंसिल से अपना नाम लिख दो। गलत मत लिखना। सुन्दर अक्षरों में लिखना। कागज़ का लिखा हुआ तो मिट जाएगा रबर से मिटाने पर। पत्थर पर लिखा इस पेंसिल से नहीं मिटता। बौने पहाड़ में कागज़ की तरह परतदार चट्टानें मिल जाती हैं। समझ लो ये शिलालेख की भी पेंसिल है।”

कूना ने महराज जी के बाजू, दीवाल पर एक फोटो टँगी देखी। यही फोटो कूना ने बोलू के घर पर भी देखी थी। लेकिन बोलू के घर की तस्वीर पेंसिल से बनी थी। और दीवाल में टँगी ये फोटो रंगीन है।

कूना को इस तरह फोटो की तरफ देखते हुए तब महराज जी ने बताया, “बोलू के बाबा की तस्वीर है। बोलू के बाबा ने इस दुकान को खोलने में मदद की थी। दुकान खोलकर मैं इस फोटो पर फूल चढ़ाता हूँ और पेंसिल के छिलकों को लोभान जैसा जलाता हूँ। एक दिन तुम बोलू को लेकर आना। ठहरो, तुमको एक टहनी देता हूँ। तुम दोनों, इस टहनी को छिलवाने दुकान आना।”

फिर कहा, “मीठा समोसा खाओगी?”

“नहीं, पेंसिल छिलवाने बोलू के साथ आऊँगी तब दोनों खाएँगे।”

कूना ने अपनी पेंसिल और टहनी उठाई और चली गई। लौटते समय उसे खरगोश इधर-उधर फिर दिखे। कुछ उसके आगे जा रहे थे। जैसे वह उनके पीछे जा रही हो। जैसे आगेवाले खरगोशों को कूना का घर मालूम था। और वे उसे घर छोड़ने जा रहे थे। कूना के पीछे भी आते हुए खरगोश थे। जैसे वे भी चाहते थे कि कूना ठीक से घर पहुँच जाए। वैसे यह कहा तो जाता था कि बाबूलाल होटल से लौटो तो खरगोश दिखाई देते हैं। एक बात थी, कि कोई भी अपने घर जाने जिधर भी जाए घर पहुँच जाते हैं। पर उसे यह मालूम होना चाहिए कि उसका घर कहाँ है।

बोलू के बाबा की जो रंगीन तस्वीर होटल में थी उसमें वे बेंच पर बैठे हैं। हाथ में छड़ी। मूँछें बड़ी। पगड़ी बाँधे। कुर्ता, धोती पहने। आँखों पर चश्मा नहीं। आँखें बड़ी। नंगे पैर। मुस्करा रहे। फोटो का फ्रेम लकड़ी का था, लाल चन्दन का। तस्वीर के रंग पेड़-पौधों और पत्थर के थे।

कूना बोलू के घर गई। बोलू दरवाज़े पर बैठा

“दो समोसा खाकर एक ही दिन में इतने बड़े हो जाओगे कि जब घर लौटोगे तो पहले कोई पहचानेगा नहीं। समोसा खाते रहो जितना बड़ा होना होगा उतने बड़े हो जाने के बाद फिर कितना भी खाओ बड़े नहीं होगे। पर उम्र बड़ी होगी। और लम्बी उम्र होगी।”

दिखा। कूना को देखकर बोलू ने कहा, “मैं तुम्हारे घर गया था।” कहकर बोलू कूना के पास उठकर आ गया।

“मैं बाबूलाल महराज के होटल गई थी। मुझे एक पेंसिल-लकड़ी मिली थी।”

“उन्होंने छील दी?”

“वहाँ मैं कभी नहीं गया। मुझे जब पेंसिल-लकड़ी मिलेगी तो मैं जाऊँगा।”

तब कूना यह बताना भूल गई कि उसके हाथ में बोलू के लिए एक छोटी-सी पेंसिल-टहनी है। कूना के ध्यान में बोलू के बाबा की तस्वीर थी जिसे वह बताना चाहती थी।

उसने कहा, “बाबूलाल होटल की दीवाल पर एक तस्वीर टँगी है। वैसी ही फोटो जो तुम्हारे घर में है।”

“अच्छा।” बोलू ने कहा।

“दुकान में फोटो क्यों लगी है?” बोलू ने धीरे-से कहा।

“उनकी पहचान होगी।” कूना ने कहा।

बोलू धीमे बोलता तो सुस्त चलता। बहुत धीमे बोलता तो चींटी की चाल चलता। इसलिए कूना ने पूछा, “तुमको कुछ हुआ है क्या? इतना धीरे क्यों बोलते हो?” कूना ने यह कहना चाहा। लेकिन कहा, “कुछ लग गया है क्या?”

“नहीं।” धीरे-से बोलू ने कहा। कहकर बोलू ने केवल सिर हिलाया।

पर वह “नहीं” शब्द बराबर भी या नहीं के “न” अक्षर बराबर भी नहीं चल पाया।

पर कूना ने “नहीं” को नहीं सुना था। और बोलू का यह कहकर चलना भी नहीं देखा था। कहीं ऐसा तो नहीं कि बोलू को बोलते सुनो तो उसको चलते देख सकते हो। बोलू को दूर से सुनो और उसको सुने पर देखे नहीं फिर भी ये तो था कि वह चलता तो था। कोई न भी देखे, कोई न भी सुने तब भी बोलू पहले अकेले घूमता चलता।

नहीं! बोलकर
बोलू नहीं चला
भ्रम हुआ ज़रूर कुछ
या सच
एक पैर थोड़ा बढ़ा या नहीं बढ़ा
खड़ा रहा या रुका
कुछ आगे खिसका
चलकर नहीं ठिठका
चलने के पहले ठिठका
कुछ चला-सा हिल गया।
बोलू कुछ-कुछ बदल रहा।

बिल का रास्ता

कूना को याद आया। बोलू से उसने कहा, “मेरे पास तुम्हारे लिए एक टहनी-पेंसिल है। छिली नहीं। बाबूलाल महराज के पास चलते हैं छिलवाने।” और दोनों बाबूलाल महराज की होटल की ओर चले। होटल दिखने लगा तो कूना ने अपने हाथ की टहनी गोलू के हाथ में पकड़ा दी। “तुम्हारी है। तुम रखो। तुम देना। पर बात मैं करूँगी। पास रहना। बोलकर दूर मत जाना। और पास रहने के लिए धीमे बोलोगे तो बाबूलाल महराज को सुनाई नहीं देगा। यद्यपि बाबूलाल महराज के कान बड़े हैं। शायद वे धीमा सुन लेते हों। पर पता नहीं कितना धीमा सुन सकेंगे। चुपचाप टहनी टेबल पर रख देना। बाकी मैं देख लूँगी।”

बाबूलाल महराज अपनी जगह पर बैठे हुए थे। बच्चों के आने की आहट उन्हें मालूम थी। कूना ने आकर कहा, “आपने जो पेंसिल-टहनी बोलू को दी थी उसे बोलू छिलवाने आया है।

बोलू! महराज जी को टहनी दो।" बोलू ने टहनी चुपके-से महराज के टेबल पर रख दी।

"कन्धारू" महराज ने आवाज़ दी। कन्धारू आया।

महराज ने कहा, "इनको कन्धे पर बैठाओ।"

"एक को कि दोनों को?" कन्धारू ने पूछा।

कन्धारू ने फिर पूछा, "क्या दोनों को तौलना है?"

"नहीं, दोनों यहाँ चिरौंजी से भरा मीठा समोसा खाएँगे, मोटे हो जाएँगे, तब वज़न लेना।"

कन्धारू ने दोनों को कन्धों पर बैठा लिया।

बाबूलाल महराज बच्चों को आमने-सामने देख रहे थे। बच्चे भी उन्हें आमने-सामने देख रहे थे। वे तीन मुँह बाबूलाल महराज की तरफ थे।

तब बाबूलाल को ब्रह्मा की तस्वीरवाले कैलेन्डर की याद आई। वे मुस्करा दिए।

महराज ने कन्धारू से कहा, "कन्धारू मैं बच्चों से बात करूँगा। तुम बीच में कुछ नहीं बोलोगे। अपना मुँह बन्द रखना।"

"हाँ, महराज।" कन्धारू ने कहा।

बाबूलाल महराज को लगा कि कन्धारू का मुँह दूसरी तरफ होता। पीठ इस तरफ होती और कन्धों पर चढ़े बच्चों का मुँह सामने होता तो अच्छा था। कन्धारू आदत से मजबूर बीच में कुछ बोल न पड़े। कन्धारू एक-एक बात पूछकर काम करता है। और कभी एक काम कई बार बताने पर भी नहीं कर पाता।

दोनों बच्चे महराज को बहुत ध्यान से देख रहे थे।

महराज ने कूना से कहा, "देखो मैं अपना बायाँ कान हिलाता हूँ।"

महराज ने अपना बायाँ कान हिलाया।

फिर बोलू से कहा, "मैं अब अपना दाहिना कान हिलाता हूँ।"

उन्होंने दाहिना कान हिलाया।

"अब दोनों कान।"

उनके दोनों कान हिल रहे थे। पर महराज जी का चेहरा स्थिर था। दोनों चकित थे। कन्धारू गम्भीर खड़ा हुआ था। बोलने के लिए मना करने के कारण उसका मुँह फूला हुआ था। वज़न में कूना हलकी थी। बोलू, कूना से कुछ बड़ा भी था। कन्धारू का मन हो रहा था कि धीरे-से फूँककर वह बोलू की तरफ का एक बाल दूसरे कन्धे पर ले आता।

अब महराज जी ने बोलू से कहा, "बोलू मैं तुम्हारे बाबा को जानता हूँ। उन्होंने मेरी बहुत मदद की थी। तुम यहाँ समोसा खाने भी आया करो। क्या अभी समोसा खाओगे, तब तक तुम्हारी पेंसिल छील दूँगा। अपने साथ दोस्तों को भी लाना। समोसा खाने से तुम जल्दी बड़े हो जाओगे।"

बोलू कुछ बोलने वाला था, उसके पहले कूना बोल पड़ी,

"महराज जी बोलू नहीं बोलेगा। बोलू बोलकर चलने लगता है। कन्धे पर से गिर न पड़े।"

कन्धारू ने कहा, "नहीं गिरेगा। मैं पकड़ा हूँ।"

कूना ने कहा, "तब वह चलेगा कैसे?"

बाबूलाल महराज ने कहा, "कन्धारू तुम बोलोगे नहीं। कूना तुम बोलो।"

कूना ने पूछा, "महराज जी, समोसा खाने से कितने दिन में बड़े होंगे?"

बाबूलाल महराज ने कहा, "चार समोसा खाने से तुम लोग दुगने बड़े हो जाओगे। पर रोज़ एक समोसा खाना होगा।"

"अगर दो-दो समोसा खा लें तो?" कूना ने आश्चर्य से पूछा।

बाबूलाल महराज ने कहा, "दो समोसा खाकर एक ही दिन में इतने बड़े हो जाओगे कि जब घर लौटोगे तो पहले कोई पहचानेगा नहीं। समोसा खाते रहो जितना बड़ा होना होगा उतने बड़े हो जाने के बाद फिर कितना भी खाओ बड़े नहीं होगे। पर उम्र बड़ी होगी। और लम्बी उम्र होगी।"

बोलू ने कहा, "समोसा नहीं खाएँगे। सब की तरह धीरे-धीरे बड़े होंगे।"

यह कहकर बोलू कन्धारू के कन्धे पर पता नहीं कैसे खड़ा हो गया। और कहते हुए कन्धारू के कन्धे से नीचे कूद गया। कन्धारू उसे फिर कन्धे पर बैठाने झट से आगे बढ़ा। बोलू को पकड़ने हाथ बढ़ाया ही था कि कूना भी कन्धे से कूद गई।

महराज ने ज़ोर-से कहा, "कन्धारू। कन्धे पर इनको मत बैठाओ। और तुम जाओ।"

कन्धारू चला गया। वह दूर जाता हुआ दिखा। जाना उसे अच्छा नहीं लगा।

बाबूलाल महराज ने बोलू से कहा, "बोलू लो तुम्हारी टहनी- पेंसिल छिल गई।"

बोलू ने पेंसिल उठाई। तब कूना ने पूछा, "अब जाएँ?"

बाबूलाल महराज ने कहा, "मैं पहले जाऊँगा। मुझे दूर जाना है। मेरे जाने के बाद जाना। तब हम सब लोग अपने-अपने घर एक साथ पहुँच जाएँगे। कन्धारू दरवाज़ा बन्द करने के बाद घर जाएगा। लो मैं जा रहा हूँ।"

पर महराज को जाते हुए बोलू और कूना किसी ने नहीं देखा। दोनों ने इधर-उधर देखा वे नहीं दिखे। तभी कन्धारू आ गया। उसने कहा, "दुकान बन्द करना है।"

कूना ने कहा, "महराज के जाने के बाद बन्द करना।"

कन्धारू, "वे चले गए।"

कूना, "हमने नहीं देखा।"

कन्धारू, "अब तो वे दूर पहुँच गए।"

बोलू, "वे गए किधर से?" कहकर बोलू टेबल के पास तक चला गया। वह टेबल के नीचे देख रहा था।

कन्धारू, "बिल के रास्ते चले गए।"

बोलू और कूना, "बिल!!"

कन्धारू, "सुरंग समझ लो।"

बोलू और कूना, "सुरंग!!"

कन्धारू ने उँगली के इशारे से बाबूलाल महराज के जाने का रास्ता दिखाया। कुर्सी के पास ज़मीन में एक बड़ा-सा बिल था। ज़मीन के अन्दर ही अन्दर शायद बिल का जाल बिछा हो। या नीचे उतरकर जाने पर चौड़े रास्ते वाली सुरंग हो। बौने पहाड़ के नीचे का एक और शहर हो!

कूना और बोलू के मन में तरह-तरह के विचार थे। बौने पहाड़ के अन्दर गिरकर वे गिरते शहर से आ चुके थे। बोलू एक बार वहाँ अकेले जाना चाहता था। यह उसने किसी से कहा नहीं था कि ऐसे में शायद वह अकेले जा नहीं पाता। बोलू ने सोचा जैसे बौने पहाड़ के ऊपर बीच में नीचे उतरने का मुख था। ऐसे और भी मुख, सुरंग या बिल हों!

स्याणा

अनिरुद्ध उमट

हमारे गाँव में कई कतारिए आते थे। ये लोग व्यापारी हुआ करते थे। अपना माल ऊँटों पर लादकर घूमते थे। हमारे गाँव में तो सुस्ताने के लिए ही रुकते थे। वे तो दूर गाँवों शहरों में जाते थे। यहाँ तक कि राजस्थान से बाहर भी। उन ऊँटों में हमारे ऊँट पराए लगते।

अन्धेरा घना होते-होते सब घरों में चले जाते। चौपाल पर लकड़ियाँ जलाकर हाथ भी तापते। रेगिस्तान की सर्दी अलग ही होती। आग से दूर होने की इच्छा नहीं होती। बात में से बात निकलती जाती। भजन गीत भी हो जाते। सुबह सब अपने काम-धन्धों पर लग जाते।

होली के बाद कतारिए फिर आने लगते। सारा गाँव टणकारों से गूँज उठता। ऊँट की आँखें शान्त होती हैं। पर कितनी! धोरों पर के आकाश जितनी। कतारिए चले जाते। उन आँखों की याद हमारे मन में होती। वे हमारे सम्बन्धियों जैसे लगते थे। उनके टोलों के पीछे बच्चे भागते थे। हल्ला मचाते। ऊँटों के मालिक हँसने लगते।

कतारिए दिन में रुक जाते। रातों में चलने लगते। माल खरीदते-बेचते। फिर चल देते।

एक बार की बात है। ऐसे ही कतारिए हमारे गाँव आए। उन्हें आए दो दिन हो गए थे। लगता जैसे एक दूसरा गाँव ही आ गया। जहाँ देखो ऊँट ही ऊँट। आदमी कम ऊँट ज़्यादा थे। काफिला बड़ा था। यह गाँव से बाहर रुका था। वहाँ तम्बू तने थे। धूल उड़ रही थी। चूल्हे जल रहे थे।

कोई खाड़ैती ऊँट को चारा दे रहा था। कोई पानी पिलाने ले जा रहा था। कोई उस पर हाथ फिरा रहा था। ऊँट अजीब-अजीब आवाज़ें निकाल रहे थे। लगता था जैसे उन्हें बैठना पसन्द नहीं। वे तो चलना चाहते हैं।

ऊँट की अपनी सुन्दरता होती है। ऊँट की चाल देखते ही बनती है। चलने पर पैर, गर्दन, पीठ ऊपर नीचे होते

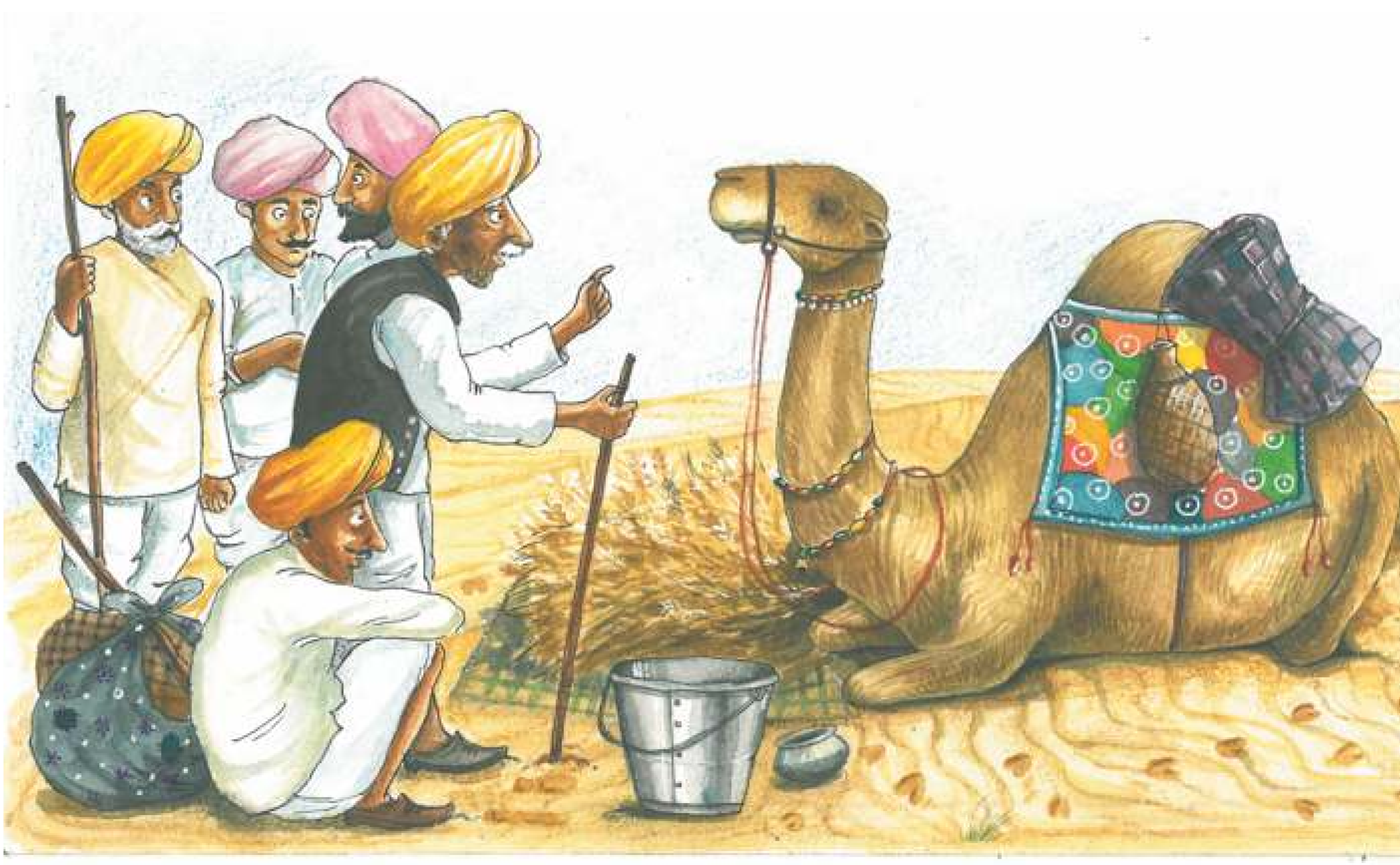

हैं। ऊँट की थुई की अलग ही सुन्दरता होती है। जैसे सोने का छोटा-सा टीला।

मैं भी दोस्तों के साथ वहाँ गया। मेरे दोस्त भैरू की नज़र एक ऊँट पर पड़ी। सारे ऊँट चलने के लिए खड़े थे। पर एक ऊँट बैठा था। खड़ा ही नहीं हो रहा था।

उसके पास भीड़ बढ़ती जा रही थी। आखिर क्या बात हुई, सब को देर हो रही थी। तभी एक बुज़ुर्ग आगे आए। उन्होंने ऊँट की आँखों को देखा और कहा, "ऊँट को ज़िद चढ़ गई है। यह सुनकर खाड़ैती परेशान हो गया।"

उसके कारण सबको देर हो रही थी। बुज़ुर्ग ने कहा, "या तो ऊँट को कोई चोट लगी है या किसी ने उसे दुख पहुँचाया है। सब कानाफूसी करने लगे।"

देर होती जा रही थी। सबने अपना सामान लाद लिया था। अब यह कैसी समस्या आ गई। सब जाना चाहते थे। रुकना कोई नहीं चाहता था।

बुज़ुर्ग ने खाड़ैती से कहा, "तुम बाद में हमारे साथ मिल जाना हम रवाना हो रहे हैं।"

खाड़ैती क्या करता! उसकी वजह से सब परेशान थे। वह नहीं चाहता था कि सब उसे कोसें। वह मान गया।

टणकारे एक बार फिर गूँज उठे। ज़िद्दी ऊँट उधर देखने लगा। देखता रहा। आखिर में उससे रहा नहीं गया। वह दुख भरी आवाज़ में अरड़ा उठा। जैसे कह रहा हो, मुझे छोड़कर क्यों जा रहे हो?

उसकी आवाज़ बुज़ुर्ग ने भी सुनी। उन्होंने काफिले को रोक दिया। उन्हें लगा ऊँट पछता रहा है। वह अकेला नहीं रहना चाहता। शायद वह भी चलना चाहता है। लेकिन नहीं। वह बैठा रहा। नहीं उठा।

एक राय से सब ने चल देना ही ठीक समझा। जानवर की ज़िद का क्या भरोसा। काफिला चला गया।

ऊँट और खाड़ैती पीछे रह गए। खाड़ैती को कुछ समझ नहीं आ रहा था। कहाँ गलती हुई? क्या कमी रह गई? वह सोचने लगा। आज तक ऊँट ने परेशान नहीं किया था। उसने तो उसका नाम ही "स्याणा" रख दिया था। खाड़ैती ने दरी उसके पास बिछा ली।

कहीं कोई चोट तो नहीं लग गई। उसने एक बार फिर देखा। चोट तो नहीं थी। इसका मतलब नाराज़ है। किसी चाम्पले ऊँट ने परेशान किया लगता है। तभी उसे याद आया। पिछले गाँव में एक चाम्पला इस के पीछे भागा था।

चित्र : शुभम लखेरा

उसी से पेट भर रहा था। दो-तीन हो गए अब गाँव में भी चिन्ता थी। सब मदद करना चाहते थे। रोटी, चारा, पानी सब कुछ। पर इनसे भी ऊपर होता है दुख बाँटना।

शायद यही कारण हो। क्या पता कोई और बात ही हो। पता नहीं कितनी देर यहाँ परदेश में रहना पड़े। एक बालटी पानी उसने ऊँट के आगे रख दिया। चारे की बोरी भी रख दी। पर ऊँट ने तो जैसे कसम खा ली थी।

खाड़ैती दरी पर सो गया। उसे डर था। कहीं मनाने से वह ज़्यादा भड़क न जाए। खाड़ैती की भी आँख लग गई। हम भी अपने घरों को चल दिए। हम कर भी क्या सकते थे।

रात को दरवाज़े खिड़कियाँ भड़भड़ाने लगे। आँधी आ गई थी। अब तो गर्मियों में यही होना था। मुझे ऊँटवाले की याद आ रही थी। वह खुले में सोया था।

खाड़ैती ने एक चादर ओढ़ ली थी। ऊँट की पीठ से सटकर बैठ गया था। कैसा दिन देखना पड़ रहा था।

उसका जी भर आया। वह रोने लगा। रोते-रोते पता नहीं चला, कब नींद आई। कब आँधी गई। कब सुबह हुई। पर ऊँट की ज़िद वैसी ही थी। न उसने पानी पिया न चारा खाया। खाड़ैती उसकी पीठ पर, गर्दन पर हाथ फेर रहा था। वह उससे बात करने लगा।

"स्याणे खड़ा हो जा। अभी भी बगत है।" पर स्याणा तो जैसे धोरे पर मूरत हो गया था। पराया देश था। खाड़ैती किस से मदद माँगता? ऊँट को छोड़ कहीं जा भी तो नहीं सकता था। जो कुछ उसके पास था।

खाड़ैती किसी से माँगता कुछ नहीं था। एक बार उसने ऊँट के गले की माला भी बेचने की सोची। पर उसके हाथ रुक गए। स्याणे पर कितनी सजती है! वैसे ही यह दुखी है। और दुखी हो जाएगा। बच्चे उसके लिए रोटियाँ लाने लगे। शाम को वह उन्हें कहानी सुनाकर समय काटने लगा। पर उसका मन तो कहीं और ही था।

उसके पास रुपए ज़्यादा नहीं थे। ज़्यादा दिन रुकना पड़ा तो क्या होगा? चिन्ता बढ़ती जा रही थी। वह बार-बार स्याणे की आँखों को देखता। कहीं कुछ पता तो चले। पर स्याणे के भीतर कुछ था। कैसे पता चले? वह तो कुछ बताता नहीं। बस घुटने जोड़कर बैठ गया है।

आखिर हमारे गाँव के मास्टर जी आगे आए। उन्होंने हमें बुलाया। तय किया कि

(शेष पेज 41 पर)

बोलीरंगोली

अप्रैल-मई की कविता थी

सन्डे तो होता है न रेस्ट का दिन
बोर कोई आ जाए तो गेस्ट का दिन
- गुलज़ार

– आशिता जैन,
बारहवीं,
सर्जना एकेडमी,
भोपाल

गुलज़ार साब की इस कविता पंक्ति पर तुम्हारे सैकड़ों चित्र तथा ढेर सारे अनुभव मिले। गुलज़ार साब के पसन्दीदा 16 चित्र यहाँ पेश हैं। इन्हें भेजने वाले चित्रकारों को उपहार में चकमक डायरी अथवा किताबें भेजी जा रही हैं।

उस दिन संडे था। और हमारे घर मेहमान आ गए। वो बोरिंग नहीं थे, पर वो संडे को आए थे। उन्होंने मुझे पका दिया। उनके आते ही हमारे सारे प्लान कैंसिल हो गए। उस दिन हम पिकनिक जानेवाले थे। संडे को हम नॉनवेज खाते हैं। पर वो वेज थे इसलिए वो भी नहीं खा सके। वो अपनी सड़ी-सड़ी बातों से बोर करते रहे। न हम खेल सकते थे, न चिल्ला सकते थे। हम बस अपना दिमाग खराब कर सकते थे। आखिर जब वो गए तो हमें पता चला कि रात हो चुकी है। और हम कुछ नहीं कर सकते हैं।

– पुरन्जय प्रधान, आठवीं, संस्कार वैली स्कूल, भोपाल

गुलज़ार जी आपने बिलकुल सही कहा। बेचारे बच्चे। उन्हें सोमवार से शुक्रवार तक पूरे पाँच दिन काम करना पड़ता है। अब तो उन्होंने हमारा शनिवार भी ले लिया है। अब सिर्फ एक दिन बचता है – संडे, जिसका हर बच्चे को इन्तज़ार रहता है। बच्चों को इतनी क्लासेस लेनी पड़ती हैं – नाचने की, ड्रॉइंग की, बोलने की, बैठने की, सारी चीज़ों की। हम सिर्फ बच्चे ही हैं और सब लोगों ने हमें थका दिया है। बस एक संडे, ही है जो हम सबको बहुत पसन्द है। सब लोगों के बहुत प्लान होते हैं। पर अगर कोई बोर गेस्ट आ जाए तो सन्डे जो एक अच्छा सपना होता है वो एक बुरा सपना बन जाता है। सारी योजनाओं पर पानी फिर जाता है। “बस बेटी पानी लाओ”, “इधर बैठो”, “वो लाओ” बच जाता है।

– ईशाना जैन, आठवीं, संस्कार वैली स्कूल, भोपाल

–अचुकी, संगीत समूह, दिगन्तर, जयपुर

– दर्शिनी के. सातवीं, डीपीएस, कोयम्बतूर

– अनिश राज, सातवीं, बिहार बाल भवन किलकारी, पटना

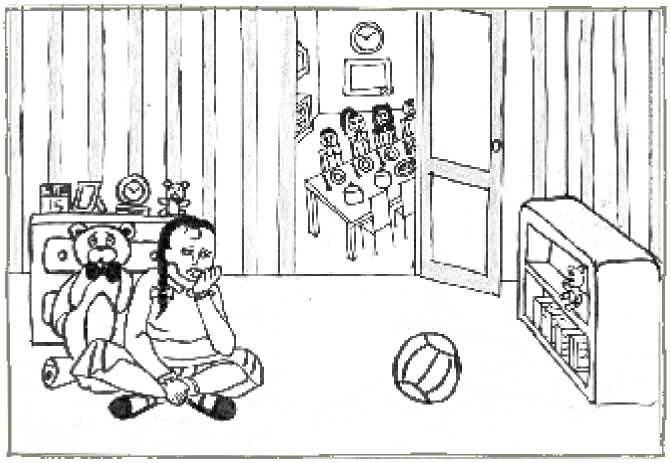

आज मेरा पेपर था। पेपर बहुत अच्छा गया। पर जब हमारी छुट्टी हुई सबकी वैन समय पर आ गई। पर मेरी वैन नहीं आई। इसी बीच मेरी वैन की एक लड़की ने मुझे बोर कर दिया। वो इतना बचर-बचर कर रही थी कि सामनेवाला बेहोश हो जाए। और मैं उसके सामनेवाली थी जो बहुत बोर हो रही थी। फिर थोड़ी देर में वैन आ गई। और मुझे उससे छुटकारा मिल गया।

– नियति जैन, छठी, सनथोम एकेडमी, देवास

– शीरिम खरे, ग्यारहवीं, सर्जना एकेडमी, भोपाल

बोलीरंगोली

– यश मित्तल, बारहवीं,
दून स्कूल, देहरादून

– शगुन सिंह, चौथी, डीपीएस पटना

पापा के बिना वो छह दिन

मुझे पापा के साथ बात करना, खेलना और उनके साथ पढ़ना बहुत अच्छा लगता है। जब तक मैं पापा के गले में हाथ नहीं डाल लेता तब तक मुझे नींद आती ही नहीं।

मुझे आज भी याद हैं वे छह दिन, जब पापा को अपने ऑफिस के काम से सोलन जाना पड़ा। घर से इतनी दूर। मम्मी घर पर नहीं होती थीं। मम्मी बहुत दूर नौकरी करती थीं। मैं तब तीसरी क्लास में था। मेरे लिए ये छह दिन ज़िन्दगी के सबसे बोरिंग थे। पापा के बगैर सब खाली खाली-सा लगता था। स्कूल जाता था लेकिन पापा को मिस करता था। मैं इन दिनों ढंग से सो नहीं पाया। खेल नहीं पाया। दादा मेरा हाथ अपने गले में डालकर सोने को कहते लेकिन पापा जैसा नरम गला मुझे किसी का भी नहीं लगता। मैं इन दिनों रोया भी खूब। सच में ये छह दिन मैं कभी नहीं भूल पाऊँगा।

– अन्तरिक्ष, पाँचवीं, मंगलम पब्लिक स्कूल महादेव, सुन्दर नगर, मण्डी, हिमाचल प्रदेश

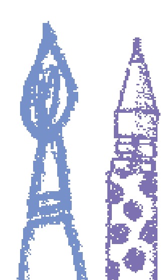

बोलीरंगोली

उस दिन बाहुबली आनेवाली थी। मेरे पूरे परिवार ने सोचा हम मूवी देखकर बाहर खाना खाएँगे। जब हम तैयार होकर बाहर निकल रहे थे तो मेरे पापा के दोस्त का परिवार हमारे घर आ टपका। मुझे उन पर बहुत गुस्सा आ रहा था। हम दोनों का परिवार बहुत बात कर रहा था। मैंने उनकी बात पे ध्यान दिया। और सुनने की कोशिश की। तो पता चला कि पुराने बचपन की बात कर रहे हैं। बहुत बोरिंग अंकल थे वो। उनका बेटा भी था जो मेरी उम्र का था। मैं उसके साथ बाहर खेलने गया तो पता चला वो तो और भी बोरिंग है। वो मुझसे पूछ रहा था कि क्रिकेट कैसे खेलते हैं। और फुटबॉल के क्या रुल्स हैं। और तो और साइकिल कैसे चलाते हैं। मैंने उन सबके जवाब दिए। और आखिर में उसने कहा कि मुझे कुछ समझ नहीं आया। वापस सब कुछ बोलो। मैं उससे बहुत तंग आ गया था। और सोच रहा था कि वो कब जाएगा। फिर बाद में जब हम फिल्म देखने गए तो पता चला हाउसफुल है। मुझे बहुत गुस्सा आया।

– एम रितिक, आठवीं, संस्कार वैली स्कूल, भोपाल

– ज्योती, रागिनी समूह, दिगन्तर, जयपुर

– खुशी, छठी, डीपीएस सूरत

पड़ोस वाले गुप्ताजी

उन्हें देख छुप जाने को दिल करता है,
कितने बोरिंग हैं पड़ोसवाले गुप्ताजी,
एक रोज़ जॉगिंग पर मिले थे,
अलग ही जादूगर आदमी हैं,
मिलते ही वक्त की गर्दन पकड़
उसकी रफ्तार रोक ली थी,
समय बीतता ही नहीं, उनकी रूखी-सूखी बातों के
दरम्यान।।
और उन्हें सुन
कान से हलक तक,
पूरा सूख गया था मैं,
उनके सफेद बालों का लिहाज़ कर,
थोड़ा रुक गया था मैं,
और करता भी क्या
मैं वहाँ नीचे देखता रहा,
कभी,
उबासियों को छुपाता
तो कभी
दिलचस्पी के जहाज़ों को डुबाता,
बचता-बचाता नींद के झोंके खाता।।
इसी बीच
एक फटा जोक उनका,
मेरे हौंसलों पर वार था,
पर अब मैं छुपने के लिए तैयार था,
जब
अगली बार उन्हें देख
छुपने की गहमा गहमी में,
मेरी रिस्ट वॉच टूट कर पॉकेट वॉच बन गई,
एक पल में लेटेस्ट फैशन को सदियों पुराना बना दिया ,
कहा था ना जादूगर आदमी हैं गुप्ताजी।
फिर भी
कितने बोरिंग हैं पड़ोस वाले गुप्ताजी।।

– राहुल गोयल, बारहवीं, सर्जना अकादमी, भोपाल

एक दिन की बात है। सोमवार का दिन था। जब मैं दोस्त के साथ बैठी थी। वह मुझे बहुत बोर करती थी। लेकिन मैम ने मुझे उसके पास बैठा दिया। जिस विषय पर मुझे बात नहीं करना रहती थी उसी विषय में वह बात करती थी। या दूसरों की बुराई करना, हर बात में दूसरों की गलती निकालना। वह दूसरों को गलत शब्द बोलती थी। जैसे पागल बोलती थी। कभी उससे गलती हो जाती तो दूसरों पर इलज़ाम लगाती थी। इससे मैं परेशान हो जाती थी।

– हताक्षी गुप्ता, छठी,
सेंट मैरी कॉन्वेंट सीनियर सेकेंडरी स्कूल, देवास

– दृष्टि दुआ, तीसरी, डीपीएस, लुधियाना

दाँत के डॉक्टर के पास मैं और मेरी मम्मी गए। मेरे छोटे भाई के दाँत ठीक करवाने। मैं बाहर की सीट पर बैठ गया। मेरे पास एक अँकल बैठे थे। मैंने उन्हें हँसाने की कोशिश की और चुटकुला भी सुनाया। लेकिन वो किसी चीज़ पर नहीं हँसे। मैंने उनसे बात करने की कोशिश की। लेकिन उन्होंने जवाब नहीं दिया। बड़ा बोर इंसान था वो। मैंने शुक्र मनाया कि मेरी मम्मी आ गईं। मैं घर आ गया।

– रेआन, तीसरी, डीपीएस लुधियाना

बोलीरंगोली

– भूमिका, दस साल,
आनन्द निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल,
भोपाल

– पूजा, चौथी, विश्वास स्कूल, गुड़गाँव

वो बोर इंसान...

आज भी याद है वो संडे का दिन। हमारे घर मेरे दोस्त के दादा आए। जैसे ही हम दोनों खेलने जाने लगे वे बोले, "बाहर मत जाओ।" और हमें बाहर जाने नहीं दिया। हम लूडो खेलने लगे तो बोले, "यह कोई खेलने का खेल है।" फिर टी वी चलाने लगे तो बोले, "आँख खराब हो जाएगी।" थक हार कर हम दोनों चुपचाप बैठ गए। तो बोले, "आजकल के बच्चे कितने आलसी हैं।" मैंने मन ही मन सोचा शुक्र है भगवान का मेरे दादा जी ऐसे बोर नहीं हैं ।

– अक्षत सिंह, तीसरी, डीपीएस लुधियाना

11 अप्रैल 2017 का दिन क्या भयानक था। घर में टीवी नहीं चल रहा था। मोबाइल की बैट्री नहीं थी। ऐसा लग रहा था जैसे मेरे दिल में रहनेवाली हर चीज़ मर गई है। एकदम सूना-सूना लग रहा था। फिर मेरी दोस्त आई। उसका नाम ईशाना है। वह पढ़ाई में अच्छी है। पर जब बात करती है तो रुकने का नाम नहीं लेती। चलते-चलते कहीं से भी फालतू चीज़ों के बारे में बात करती है। उस दिन वो एक व्यक्ति के बारे में बातें करती रही। उसकी बातें बन्द ही नहीं हो रही थीं। ऐसा कोई करता है क्या? वो तो बस अपने दुनिया में लगी थी। आखिर में कोई बहाना बनाकर मैं भाग गई। मेरा पूरा समय बरबाद कर दिया उसने। पर अब भी वो मेरी दोस्त है।

– श्रुति सक्सेना, आठवीं,
संस्कार वैली स्कूल, भोपाल

– प्रियान्शु कुमार, आठवीं, परिवर्तन, सिवान (बिहार)

एक बार की बात है। जब मीनाबाज़ार लगा था। वहाँ से मैंने पज़ल क्यूब लिया था। मैंने उसे पहली बार खरीदा था तो वह मज़ेदार लगा। लेकिन वो तो बहुत बोरिंग निकला। इतना बोरिंग कि मैं सोच ही नहीं सकता था। वो खराब ही नहीं होता था। होता था तो उसे जोड़कर सही कर देता था। वो आज भी वैसा का वैसा रखा है। जब मैं उसे उठाता हूँ तो मैं बहुत बोर हो जाता हूँ। जब मेरा मन उसे तोड़ने का होता है लेकिन मम्मी-पापा की वजह से मजबूर हूँ। जब उसे देखता हूँ तो मुझे उस मीनाबाज़ार की याद आती है आखिर मैंने उसे क्यों खरीदा।

– स्वर्णदीप बामनिया, छठी, केन्द्रीय विद्यालय, देवास

– रौनक कपूर, चौथी, डीपीएस पटना

पिछले रविवार मुझे बहुत गुस्सा चढ़ा। उस दिन मैं आराम से सो रहा था। एक घण्टे बाद मुझे जो गुस्सा चढ़ा वो मैं कभी भुला नहीं सकता।

मेरे दोस्त ने मुझे एक पल भी सोने नहीं दिया। कभी बोलता, “चलो कुछ खाते हैं।” तो कभी, “चलो कुछ खेलते हैं।” तो, “चलो टीवी देखते हैं।” पाँच मिनट बाद वो कहता, “नींद आई है।” मैंने सोचा चलो मैं भी सो जाऊँ। थोड़ी देर बाद वह फिर से कहने लगा, “चलो बातें करते हैं।” मैंने उसी वक्त उसे घर से निकाल दिया। और कहा, “खबरदार जो कभी अन्दर आए।”

– गुरुवंश, तीसरी, डीपीएस लुधियाना

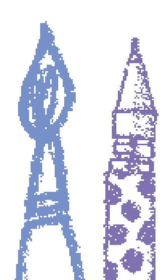

बोलीरंगोली

– विक्रान्त राजे परमार, नवीं, केन्द्रीय विद्यालय देवास (म.प्र.)

संडे होता है न रेस्ट का दिन
बोर कोई आ जाए तो गेस्ट का दिन
मज़े का मूड था संडे आया था
बेल बजी तो देखा गेस्ट कोई आया था
मैंने सोचा कोई मेरी सहेली आई
पर देखा तो परिवार सहित बुआ खड़ी पाई
बच्चे साथ होते तो मज़े ही करते
खेलते-कूदते खूब मस्ती करते
लेकिन लाइट न होने से सब तंग हो गए
बोर इतने हुए कि सब दंग हो गए।

– बिस्मन, तीसरी, लुधियाना डीपीएस

– अन्शिका दीप, पाँचवीं, बिहार बाल भवन किलकारी, पटना

जून-जुलाई की कविता सुनो

एक मच्छर मिला, गुनगुनाता हुआ
कान के पास सीटी बजाता हुआ
बड़ा मनचला, एक मच्छर मिला
दोनों हाथों से जब मारना चाहा तो
एक ताली बजी
मनचला खुश हुआ, नाचने लग गया
ताता थई, ताता थई
ताता थई, ताता थई
बड़ा मनचला एक मच्छर मिला।

गुलज़ार

हो सकता है बड़े तुम्हें इसके अर्थ बताएँ। उनके अर्थ सुनो-समझो पर चित्र अपने मन का ही बनाओ...। कोशिश करना कि तुम्हारा चित्र हमें 30 जून तक मिल जाएँ। चित्र के साथ अपना पता, कक्षा, फोन नम्बर ज़रूर लिखना।

पता है –
चकमक, एकलव्य,
ई-10, शंकर नगर, शिवाजी नगर, भोपाल -16
(फोन - 09425010115)
चाहो तो ईमेल कर दो chakmak@eklavya.in

स्याणा

(पेज 32 का शेष भाग)

ऊँट को खड़ा किया जाए। उनको विश्वास था कि एक बार खड़ा हो गया तो, वह ज़रूर ही उस तरफ चलने लगेगा, जहाँ उसके साथी गए हैं। हम लोग दो बड़े लट्ठे ले आए। उन्हें ऊँट के मुड़े घुटनों में फँसा दिया फिर करीब बीस लोगों ने उसे उठाने की कोशिश की। बड़ी गिड़गिड़ाहट, दुख और दर्दभरी आवाज़ के साथ वह खड़ा हुआ। पर कुछ काँप भी रहा था। हम खुश थे। खाड़ैती को दुख हो रहा था फिर भी वह खुश था। स्याणा किसी तरह खड़ा तो हुआ। खाड़ैती हमें गले लगा रहा था।

यह खुशी ज़्यादा देर नहीं रही। ऊँट फिर से झुका और घुटनों को मोड़कर बैठ गया। खाड़ैती पर तो जैसे पहाड़ ही टूट गया। उसने सर पकड़ लिया।

“कितना ज़िद्दी जानवर है।” सब कहने लगे। पर खाड़ैती उसे ज़िद्दी नहीं कह रहा था। वह तो जानना चाहता था उसे क्या दुख है। स्याणा तो उसकी छाया है। कैसे नाराज़ हो गया?

उस रात फिर आँधी आई। पूरे गाँव में आँधी का शोर था। कुछ और सुनाई नहीं दे रहा था। पर उस आँधी में किसी के रोने की आवाज़ भी थी। यह खाड़ैती था। पर एक आवाज़ और भी थी। ये दो जने कौन रो रहे थे? दूसरा स्याणा था। वह भी दहाड़ें मार रहा था। किसी तरह हम रात भर सो पाए।

सुबह हर घर का रास्ता एक ही तरफ जा रहा था। ऊँट के पास। कोई रोटी लाया, कोई छाछ। कोई गुड़। कोई चारा तो कोई पानी।

पर दोनों ही ने खाने की किसी चीज़ को नहीं छुआ। दोनों की आँखें सूजी हुई थीं।

खाड़ैती ऊँट की गर्दन पर हाथ फेर रहा था। उसकी आँखों को पानी से धो रहा था। पर स्याणे के आँसू रुक ही नहीं रहे थे। हमारी आँखें भी नम हो गई थीं।

कैसा दुख है! कैसा अपनापन है! कैसी ज़िद्द है! कौन कसूरवार है! तभी हमने देखा। स्याणा अपनी गर्दन हिला रहा था। हमने चारा उसके पास सरका दिया। उसने अपना मुँह उसमें डाल दिया। खाड़ैती की आँखों में चमक आई। कुछ देर बाद स्याणे ने गर्दन इधर-उधर घुमाई। कुछ कहना चाहता था। वह आगे की ओर झुक रहा था। हम पीछे सरक गए।

सब चुप थे। कहीं फिर रूठ गया तो। पर वह तो खड़ा हो गया था। अपने आप। हमने राम-सा पीर की खम्भा कहने में देर नहीं लगाई। जो गुड़ स्याणे के लिए आया था, उसके टुकड़े प्रसाद के रूप में बाँटने लगे।

“उठ गया... स्याणा उठ गया।” खाड़ैती नाच रहा था। उसके पुट्ठों पर, रानों पर हाथ फेर रहा था। स्याणा ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ लगा रहा था। जैसे कह रहा हो – अब बहुत देर मत करो। चलो। हम पीछे रह जाएँगे।

खाड़ैती ने खाने की चीज़ें ले लीं। ऊँट की रास पकड़कर चल दिया। जिधर काफिला गया था।

सड़क के दोनों ओर हम सब खड़े थे। स्याणे को देख रहे थे। दोनों के प्रेम के बारे में सोच रहे थे। खाड़ैती स्याणे से नाराज़ नहीं था। अब दोनों एक-दूसरे की छाया बने चले जा रहे थे। कभी-कभी स्याणा गर्दन मोड़ पीछे देखता। आवाज़ लगाता। फिर आगे चल देता। उनकी आँखें दूर अपने साथियों को खोज रही थीं।

फरवरी-मार्च की चित्र पहेली हल

अं	गी	ठी		गा	ज	र		बा
गू			को	य	ल		म	ग
र	वि	वा	र		त		छ	ड़
		ह	ल		रं	गो	ली	
मा	प	न		झा	ग			को
	व		बे	ल		क	म्ब	ल
पि	न		स	र	क	स		ता
	च	न्द	न			र	ब	र
टि	क्की			सू	र	त		

माँ की बेबसी

कुँवर नारायण

न जाने किस अदृश्य पड़ोस से
निकलकर आता था वह
खेलने हमारे साथ —
रतन, जो बोल नहीं सकता था
खेलता था हमारे साथ
एक टूटे खिलौने की तरह
देखने में हम बच्चों की ही तरह
था वह भी एक बच्चा।
लेकिन हम बच्चों के लिए अजूबा था क्योंकि हमसे भिन्न था।
थोड़ा घबराते भी थे हम उससे क्योंकि समझ नहीं पाते थे
उसकी घबराहटों को,
न इशारों में कही उसकी बातों को,
न उसकी भयभीत आँखों में
हर समय दिखती
उसके अन्दर की छटपटाहटों को।
जितनी देर वह रहता
पास बैठी उसकी माँ
निहारती रहती उसका खेलना।
अब जैसे-जैसे
कुछ बेहतर समझने लगा हूँ
उनकी भाषा जो बोल नहीं पाते हैं
याद आती
रतन से अधिक
उसकी माँ की आँखों में
झलकती उसकी बेबसी।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि कुँवर नारायण की इस कविता पर ...स्कूल के बच्चों ने कविताएँ लिखी हैं। और क्या खूब लिखी हैं ...तुम भी पढ़ो। यह कविता पाँचवीं की रिमझिम में तुम पढ़ रहे होगे। और अगर तुम्हारे मन में भी इस कविता को पढ़कर एक कविता आए तो लिखना और चाहो तो हमें भी भेजना।

इस कविता के बारे में दो बातें -

बहुत कम चीज़ें हमारे देखने में आती हैं। बहुत कम चीज़ें सुनने में। और सबसे कम पढ़ने में। ज़्यादा चीज़ें देखने से छूटी रहती हैं। ज़्यादा चीज़ें सुनने से। और पढ़ने से तो ...पूछो ही मत। जैसे, इक्की-दुक्की कविताएँ होंगी जो शारीरिक और मानसिक चुनौतियाँ झेल रहे लोगों के बारे में होंगी। (वैसे यह कविता माँ के बारे में है या बच्चे के बारे में ...?) यह कविता तो उन सब लोगों के बारे में, वनस्पतियों के बारे में, उन फूलों के बारे में है जो खिले रहते हैं। हमारे ठीक आसपास। पर हमें दिखते नहीं हैं। गुलाबों, कमलों के आगे

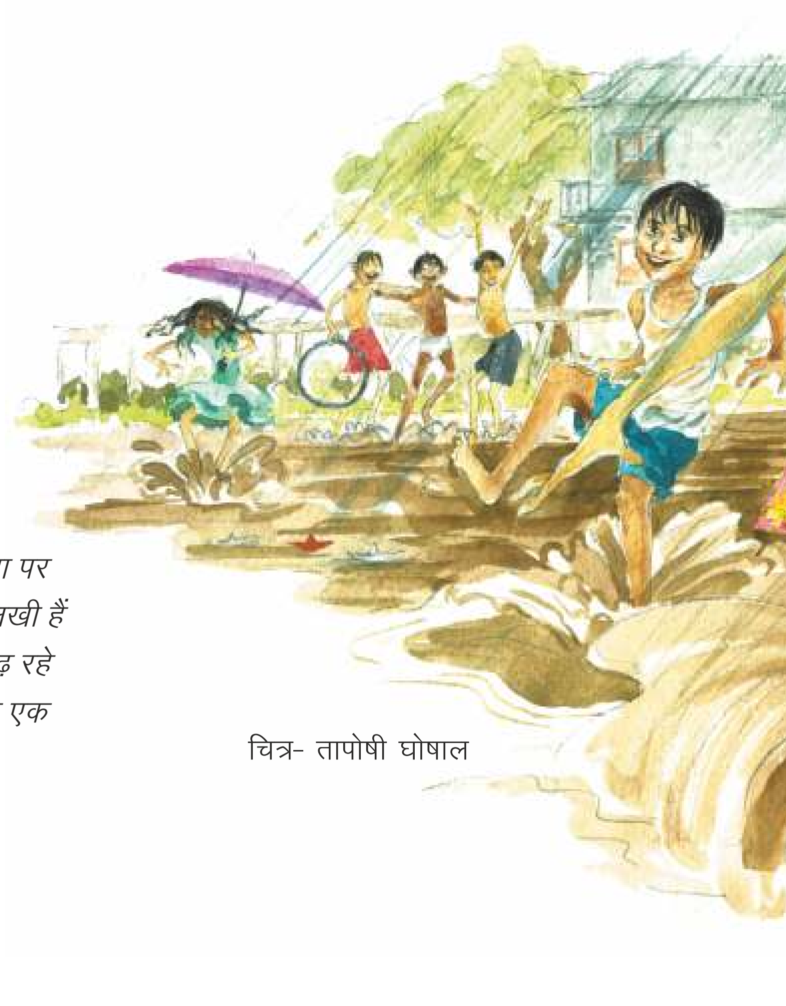

चित्र- तापोषी घोषाल

हम उन्हें भूले रहते हैं। इस कविता को पढ़कर आए भाव से कोई मौसमी फूल पर भी कविता लिख सकता है। एक पक्षी जो पतंग की डोर से छिलकर अपाहिज हो गया है उस पर भी। अपनी कक्षा के उस साथी पर भी जिससे शिक्षक या अन्य लोग बराबरी से पेश नहीं आते। एक दूरी बनाए रख लेना चाहते हैं।

इस कविता की पहली पंक्ति में *अदृश्य पड़ोस* एक शब्द आया है। कितना अच्छा शब्द है ये - अदृश्य पड़ोस। कि पास तो इतना है। पड़ोस जैसा। पर दिखता नहीं है। हम जानते नहीं हैं। हमारा ध्यान ही नहीं जाता। जैसे एक देश होता है और उसका भी तो एक पड़ोस होता है। पड़ोसी देश। पर हम पड़ोसी देश के बारे में भी कितना कम जानते हैं। वहाँ के लोगों के बारे में। उनसे मिलना ही नहीं हो पाता। हम अखबार या टीवी पर ज़रूर कभी-कभी उनके बारे में कुछ सुन लेते हैं। एक बार मैंने सर्दियों में एक बहुत मीठा आम खाया। दूकानदार तालिब ने बताया कि यह चौसा है और कराची से आया है। हमारे यहाँ भी चौसा आम होता है। बहुत ही मीठा। हमारे यहाँ भी आम का मौसम जाते-जाते चौसा आता है। जुलाई-अगस्त में। कराची में भी इतना मीठा आम चौसा होता है। पर हमारे यहाँ वह कितनी देर से पहुँच पाता है। इतनी देर से कि हम पहचान ही न पाए कि यह चौसा है और पाकिस्तान से आया है। तब मुझे शर्म भी आई कि पड़ोस के देश की मिठास के बारे में मैं कितना कम जानता हूँ। और इस मिठास की खबर कोई अखबार कोई टीवी नहीं लाकर देती।

इस कविता में रतन का परिचय है - *रतन, जो बोल नहीं सकता था।* क्या तुम्हें यह परिचय ठीक लगा? अगर तुम्हें रतन का परिचय देना हो तो क्या लिखोगे? शारीरिक या मानसिक कमियों को परिचय बनाए बिना क्या हम कोई सुन्दर कविता लिख सकते हैं। इसी विषय पर। तुम कोई कविता लिखना चाहोगे?

कविता में एक जगह टूटे खिलौने शब्द आया है। *खेलता था हमारे साथ - टूटे खिलौने की तरह।* टूटे खिलौने का एक अर्थ यह भी फूटता है कि एक खिलाड़ी की हैसियत से वह खेल में भाग नहीं ले सकता था। वह खेल का एक साधन भर हो सकता था। क्या खिलौना अपनी मर्ज़ी से खेल में भाग ले सकता है? मैं सोचता हूँ कि रतन के लिए बेहतर उपमा क्या हो सकती है।

रतन अजूबा था....हमसे भिन्न था। थोड़ा घबराते थे। हम अजनबी या हमसे थोड़े से अलग लोगों से घबराते हैं। लेकिन जैसे-जैसे उन्हें जानते हैं उनसे दोस्ती करते हैं उन्हें समझते हैं हमारा सारा डर जाता रहता है। ट्रेन में जगह-जगह अजनबियों से खाने की चीज़ें या मेलजोल बढ़ाने को लेकर खबरदार किया जाता है। एक धोखे की वजह से हज़ारों-हज़ार लोग शक के घेरे में आ जाते हैं। हमारी कॉलोनी में एक धर्म विशेष के लोगों को, एक रंग विशेष के लोगों को किराए से मकान मिलना लगभग असम्भव है। क्या तुम्हारा इस तरह का कोई अनुभव है?

चित्रः अतनु राय

माँ उसे निहारती रहती उसका खेलना। माँ की आँखों में झलकती उसकी बेबसी। क्या रतन भी अपनी माँ की बेबसी देखता होगा? क्या हमारी आँखों की बेबसी शारीरिक मुश्किलें झेल रहे लोगों को हिम्मत देती होगी?

क्या उसकी घबराहटों, इशारों, भयभीत आँखों में या छटपटाहटों में इस बेबसी का कोई हाथ होगा? कविता के आखिरी दो शब्द हैं - उसकी बेबसी। यह माँ की बेबसी है या माँ की आँखों में झाँकती रतन की बेबसी?

रतन के बारे में कविता कहती है - *देखने में हम बच्चों की ही तरह था वह भी एक बच्चा।*

वो कौन-कौन सी चीज़ें होंगी जिनमें रतन एक आम बच्चे-सा नहीं था।

रतन बोल नहीं सकता। इस कविता में कवि ने भीतरी दुनिया को ही ज़्यादा खोला है। एक तरह से जो हम देखकर महसूस करते हैं। पूरी कविता में एक तरह की चुप्पी है। यह पूरी कविता किसी से कही नहीं जा रही है। वह सोची और महसूस की जा रही है। जैसे रतन महसूस करता होगा। बाहर के बात-बात पर बोल देने वाले संसार से वह इसी तरह भीतर रहकर सम्वाद करता होगा।...

कभी-कभी इस कविता को पढ़ते हुए यह भी सोचता हूँ कि क्या यह कविता *पिता की बेबसी* के नाम से भी लिखी जा सकती थी? मुझे लगता है कि नहीं। पिता हमारी दुनियाओं के कर्त्ता-धर्ता समझे जाते हैं। वे बेबस नहीं हो सकते! पिता अकसर शक्ति के साथ, सम्पन्नता के साथ, मुकम्मल चीज़ों के साथ आते हैं। रतन जैसे किरदार कमतर समझे जाते हैं। स्त्रियाँ, लड़कियाँ सदियों से भेदभाव सहती रही हैं। इसलिए वे ही रतन की स्थिति समझ पाती हैं? पर असल में न तो रतन कमज़ोर है न स्त्रियाँ... फिर क्यों हमारा स्वाभाविक जोड़ वही होता है। ज़्यादातर चुटकुलों में स्त्री की जगह पुरुष किरदार रखकर देखिए। दो मिनिट में चुटकुले का दम घुट जाएगा। तब आपको पता चलेगा कि ये जो हँसी आ रही थी असल में उसका स्रोत क्या था। वही। कि स्त्री कमज़ोर है और उसका मज़ाक बनाया जा सकता है।

कुँवर नारायण हिन्दी के बहुत प्रतिष्ठित कवि हैं। उनकी कविताएँ पढ़ना एक सघन अनुभव होता है। कविताकोश में उनकी कई कविताएँ संग्रहित हैं। मौका मिले तो पढ़ना।

चलने में दिक्कत
कभी सोचा है,
उनके बारे में,
जो चल नहीं पाते हैं?
क्या दिक्कत होती होगी
उनको?
कभी-कभी छड़ी के साथ,
वह ऐसे बैठे
क्या सोचते होंगे?
कि मैं क्या करता पैरों के
साथ?
क्या खेलता?
यह सब मन में आता
एक छोटे से बच्चे के मन में,
जिसको है,
चलने में दिक्कत।

- गायत्री अय्यर

हमारा दोस्त विराट
विराट बोल नहीं पाता था।
वह हर दिन स्कूल आता था।

हम सब उसके
हाथों के इशारों से
समझ जाते थे
वह क्या कह रहा था।

जब अध्यापिका जी
कुछ न समझा पातीं
तो हम उनकी मदद
करते थे।

- अक्षत ठाकुर

एक नया समय
अजूबा एक अनोखा शब्द है
न जाने इस दुनिया में कितने अजूबे हैं?
जो बोल नहीं पाते, जो देख नहीं पाते।
पर क्या इन सारे अजूबों में कमी है?
एक रंगीन शाम आएगी जब सारे अजूबे
एक साथ खेलेंगे।
आएगी होंठों पर मुस्कराहट
और घबराहट हवा हो जाएगी।

नया समय शुरू होगा।
जैसे रातों में चमकते तारे
जैसे सपनों में हँसते फरिश्ते
सारे मीठी यादें बन जाएँगे।
और एक रोमांचक और
नया समय शुरू होगा।

- अनुष्का सेनगुप्ता

नन्ही-सी जान
एक नन्ही-सी जान
जो बैठी रहती एक कोने में।
बोल नहीं सकती थी इसलिए
खेलती नहीं।

उसे लगता था कि
सब हँसेंगे उसके ऊपर
लेकिन थी एक सुन्दर-सी जान।
- ध्रुवा विजय, पाँचवीं।

चित्रः चन्द्रमोहन कुलकर्णी

चुप बैठा देखो
शाम आई,
बच्चे घरों के बाहर दौड़े,
उनमें से था वो,
किसी को नहीं पता कौन था वो?
चुप-चाप पेड़ के नीचे बैठता,
न कुछ बोलता।
शर्माता था, या घबराता था,
बोल नहीं पाता था क्या?
किसी को उसके माँ-बाप न पता,
अनाथ था क्या?
टूटे खिलौने की तरह था,
ना बोल सकता, ना माँ-बाप
ना कोई उसको जानता,
चुप बैठा देखो वो।

- अदा खेमका

मीरा की कहानी
बचपन का समय इतना खास
होता है, जैसे अजूबा
दोस्तों के साथ बड़ा मज़ा आता है।
मेरी एक दोस्त मीरा बोल नहीं पाती थी
लेकिन हमारे साथ खेलती
उसको अपनी बात समझाने में बहुत देर लगती
पर बड़ा मज़ा आता
जैसे सूरज ढलता, हम नदी के पास जा के खेलते
पर वह पानी में पैर डालकर अपने आपको निहारती
उसको पानी से खेलना बहुत अच्छा लगता,
जब वर्षा आती तो हम घर भाग जाते और वह भीगती
फिर दूसरे दिन खाँसती रहती
मेरी दोस्त मीरा।

- सामया

चित्रः तापोषी घोषाल

एक बहन का प्रेम
पड़ोस की ही एक लड़की थी,
देखने में तो साधारण थी,
पर ज़िन्दगी को पूरी तरह
जी नहीं पाती थी।

शायद इसलिए क्योंकि
सीखने की गति थोड़ी धीमी थी।
बोल भी नहीं पाती थी।

उसकी बहन ही थी उसकी
सबसे बड़ी सहायक
हर कदम पर उसके साथ चलने वाली,

उसी को विश्वास था कि उसकी बहन
बड़ी होकर कुछ कमाल कर दिखाएगी।

- साध्या गौड़

तुम भी हमारी तरह हो...

तुम भी हमारी तरह हो
आओ ना खेलने
स्वागत है तुम्हारा

तुम्हारे बारे में सोचकर डर लगता है,
क्योंकि शायद तुम ठीक से चल नहीं पाते
हमेशा डर तो तुम्हारे गिरने का रहता है।

तुम्हारी हिम्मत की दाद देनी होगी
गिरकर फिर चलने लगते हो।

तुम्हारे बारे में सोचकर लगता है
जो तुम कर सकते हो
मैं क्यों नहीं?
सोचकर डर लगता है।

- निहाल

हमारा दोस्त
हमारे साथ खेलता था वो,
हमारा साथी था जो।
बोल ना पाता,
तो हमारे साथ खेलने कैसे आता।
मानते थे उसकी बात,
क्योंकि देता था हमारा साथ।
बोलते थे उसके हाथ
पर मुँह नहीं देता था साथ।
एक दिन बोला एक शब्द उसने,
चौंक गया उसको मैं सुनके
बोल पाता था वो,
हमारा साथी था जो।
सब देते थे साथ,
चाहे जैसे हो हालात।

- अरनव तिवारी

सभी रचनाएँ - शिव नाडर स्कूल, गुड़गाँव के पाँचवीं के बच्चे

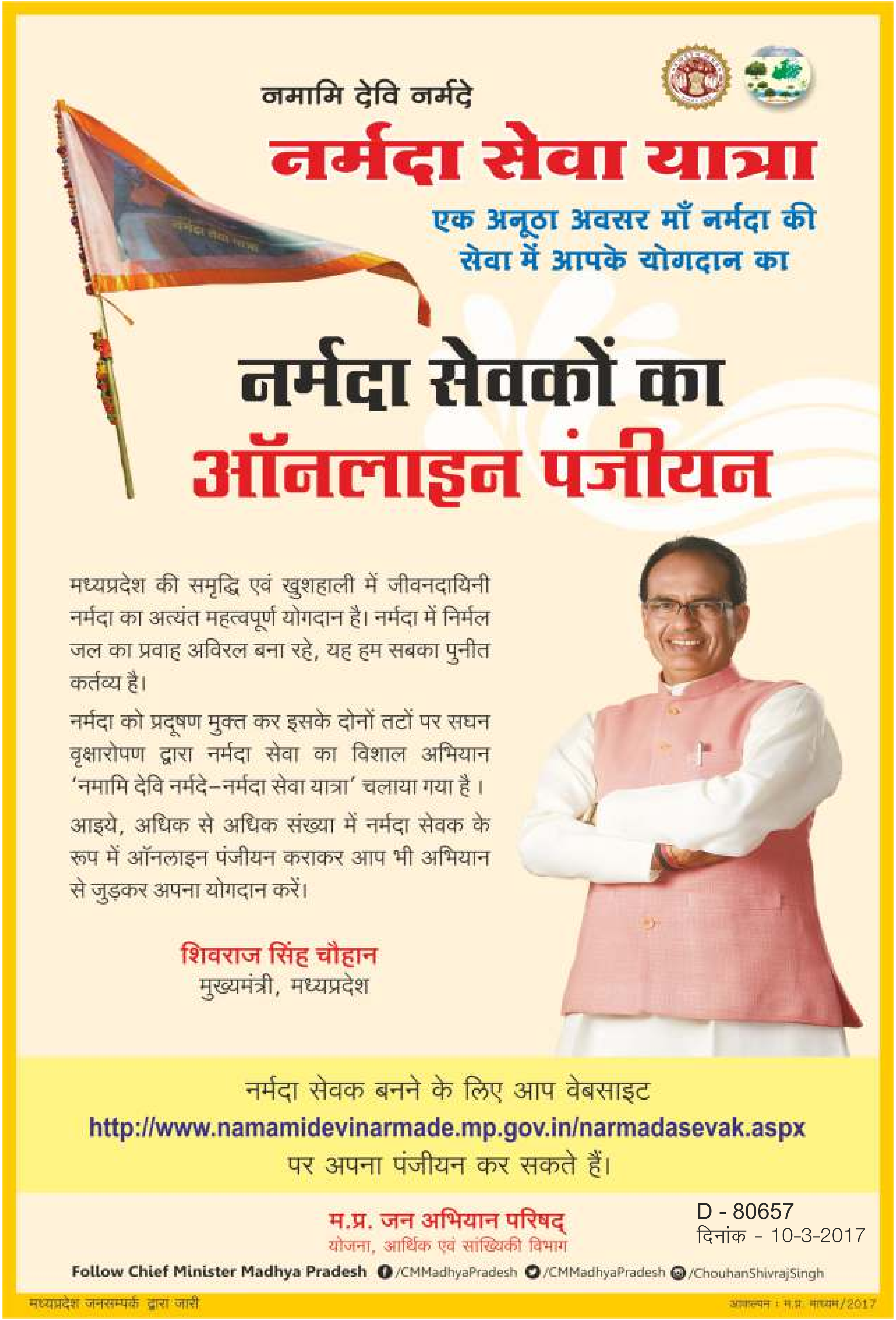

नमामि देवि नर्मदे
नर्मदा सेवा यात्रा
एक अनूठा अवसर माँ नर्मदा की
सेवा में आपके योगदान का
नर्मदा सेवकों का
ऑनलाइन पंजीयन
मध्यप्रदेश की समृद्धि एवं खुशहाली में जीवनदायिनी नर्मदा का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है। नर्मदा में निर्मल जल का प्रवाह अविरल बना रहे, यह हम सबका पुनीत कर्तव्य है।
नर्मदा को प्रदूषण मुक्त कर इसके दोनों तटों पर सघन वृक्षारोपण द्वारा नर्मदा सेवा का विशाल अभियान 'नमामि देवि नर्मदे-नर्मदा सेवा यात्रा' चलाया गया है ।
आइये, अधिक से अधिक संख्या में नर्मदा सेवक के रूप में ऑनलाइन पंजीयन कराकर आप भी अभियान से जुड़कर अपना योगदान करें।
शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश
नर्मदा सेवक बनने के लिए आप वेबसाइट
http://www.namamidevinarmade.mp.gov.in/narmadasevak.aspx
पर अपना पंजीयन कर सकते हैं।
म.प्र. जन अभियान परिषद्
योजना, आर्थिक एवं सांख्यिकी विभाग
D - 80657
दिनांक - 10-3-2017
Follow Chief Minister Madhya Pradesh /CMMadhyaPradesh /CMMadhyaPradesh /ChouhanShivrajSingh
मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी
आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2017

अजीब सी अनिशा

ज्योत्सना

मेरी बहन अनिशा का मूड बहुत खराब था। वह गुस्से में थी। उसे देखकर मुझे बहुत डर लग रहा था। अनिशा मेरी बड़ी बहन है। मम्मी बताती है कि बचपन में खेलते-खेलते छत से गिर गई थी, तभी से अनिशा अजीब-अजीब हरकतें करने लगी है। घर में सभी उसे अनदेखा करते हैं। आज उसे देखकर मैं सच में बहुत डर रही थी। मैं ज़िन्दगी में कभी इतना नहीं डरी थी।

सर्दी का मौसम था। अनिशा मेरे पास आई और बोली, "चल मेरे साथ।" वह मुझे खींचकर कमरे में ले गई और अन्दर से बन्द कर दिया। मैं रोने लगी और सोचने लगी कि इसने मुझे कमरे में क्यों बन्द किया! मुझे लगा कि शायद यह मुझसे लड़ाई करना चाहती होगी। मैंने अलमारी खोली और अपने बचाव के लिए उसमें से मम्मी का मेकअप बॉक्स निकाल लिया। लेकिन वह मुझे अन्दर छोड़कर बाहर चली गई। मैंने कमरे में कुछ ढूँढना शुरू किया। मुझे एक हथौड़ा मिला जिससे मैं खिड़की तोड़ने लगी। खिड़की तोड़कर मैं गली में निकल गई और चुपचाप अनामिका, अपनी सहेली को जाकर उसे सारी बात बताई। मेरी बात सुनकर उसे यकीन नहीं हुआ। तब मैंने उससे कहा, "अगर यकीन नहीं होता तो मेरे साथ मेरे घर चल।" तब अनामिका बोली, "अनिशा ऐसा नहीं कर सकती। वह अपनी बहन को कमरे में क्यों बन्द करेगी?"

मैं और अनामिका मेरे घर आए। अनिशा तब तक कमरा खोलकर अन्दर जा चुकी थी। उसने देखा होगा कि मैं वहाँ नहीं हूँ। वह खिड़की के पास में खड़ी बड़बड़ा रही थी। मैं गली के बाहर अनामिका के साथ छिपी हुई थी। मैंने अनामिका से पूछा, "क्या तुम मेरे साथ घर के अन्दर चलोगी?" वह बोली, "चलो, मुझे तो बस इस बात का सबूत चाहिए।"

हम दोनों घर गए। अन्दर कोई नहीं था। मुझे लगा शायद अनिशा मुझे ढूँढने गई होगी। तभी मुझे एक लेटर मिला जिसमें लिखा था –

मैं अनिशा, घर से दूर जा रही हूँ। मम्मी मेरी फिक्र मत करना। मैं अपने साथ ज्योत्सना को भी ले जाना चाहती थी। मैं सोच रही थी कि उसे सरप्राइज़ दूँगी लेकिन पता नहीं वह कहाँ चली गई! मम्मी मैं आपको एक राज़ बताना चाहती हूँ लेकिन आप किसी को भी ये राज़ मत बताना। मेरी आपसे प्रार्थना है। मेरा राज़ यह है कि मैंने आपसे एक बात छुपाई थी। मैंने एक बार ज्योत्सना की सबसे अच्छीवाली किताब फाड़ दी थी और आपकी डायमंड जैसी दिखनेवाली अँगूठी अपनी दोस्त को गिफ्ट कर दी थी। इस बात के लिए मुझे माफ कर देना। आप मुझसे नाराज़ मत होना वरना मैं कभी घर नहीं आऊँगी।

पूरा लेटर पढ़ने के बाद मैंने अनामिका से कहा कि मुझे माफ कर दो। मैंने बेकार में अनीशा को बुरा समझा। लेकिन उसने गलती तो ज़रूर की है। मम्मी की सबसे प्यारी अँगूठी किसी को दे दी और मेरी किताब फाड़ दी। उसे इस गलती की सज़ा ज़रूर मिलेगी।

मैंने अनामिका से कहा, "क्या तुम मेरे साथ उसे ढूँढने चल सकती हो?" वह बोली, "घर पर मेरे पापा ही हैं। मेरी मम्मी और भाई गाँव में रहते हैं। चलो मैं पापा से पूछती हूँ।" कहकर अनामिका अपने घर चली गई और मैं बाहर खड़ी उसका इन्तज़ार करने लगी। जब अनामिका अपने पापा से

पूछकर आई तो उसने कहा कि पापा ने कहा है कि जाना है तो किसी बड़े के साथ जाना। तुम अपनी चाची के साथ जाना क्योंकि वह भी जाना चाहती हैं। वह तुम्हें भी अपने साथ लेकर जाएँगी। मैं खुश हो गई और जाने की तैयारी करने लगी। मेरे भैया-भाभी भी बोले, "हम भी चलते हैं। चलो, हम सभी उसे ढूँढने तुम्हारे साथ चलते हैं। पता नहीं कहाँ चली गई होगी।"

चित्र : नीलेश गहलोत

हमने अनिशा को पूरे इलाके में ढूँढा। लेकिन वह कहीं नहीं मिली। हम बहुत थक गए थे। तभी अनामिका की चाची ने पूछा, "वह कहाँ जा सकती है? कोई अन्दाज़ा है?" मैंने कहा, "उसे ट्रेन में बैठना बहुत पसन्द है। कहीं वह वहीं तो नहीं चली गई?" भइया ने सभी के लिए टिकट का इन्तज़ाम किया और हम सभी स्टेशन में घुस गए। वहाँ भी हमने उसे बहुत ढूँढा। वह कहीं नहीं थी। टेंशन में सिर चकराने लगा।

तभी मैंने देखा कि मेरे स्कूल की दोस्त माही भी वहीं पर है। हमने उससे पूछा कि तुमने कहीं अनिशा को देखा है? वह बोली, "उसने तो कहीं नहीं देखा। वह तो यहाँ पर काफी देर से है।" फिर वह भी हमारे साथ अनिशा को तलाशने लगी। वहीं पर उसके मम्मी-पापा भी थे। वे भी हमारे साथ में जुड़ गए।

मैंने कहा, "एयरपोर्ट चलते हैं। उसे जहाज़ देखने का बड़ा शौक है। कहीं वह वहीं तो नहीं चली गई।" यह सुनकर मैं और अनामिका उबासी लेते हुए उठे। पीछे-पीछे अनामिका की चाची बोली, "तुमने पहले कभी एयरपोर्ट देखा है?" अनामिका ने कहा, "नहीं मैं वहाँ पहले कभी नहीं गई। भैया बोले, "चलो-चलो आगे चलो।"

हम आगे बढ़े तो देखा कि सीढ़ियाँ अपने आप खुल गईं। मैंने भैया से पूछा, "ये सीढ़ियाँ जादुई हैं!" हम सीढ़ियों से चढ़कर जैसे ही अन्दर पहुँचे तो सभी की आँखें खुली की खुली रह गईं। आज से पहले कभी किसी ने एयरपोर्ट नहीं देखा था। सभी सिर ऊपर करके हर तरफ देखने लगे। सभी बहुत खुश लग रहे थे। मज़ा भी आ रहा था। सभी सोच रहे थे कि क्यों न फ्लाइट के अन्दर जाकर बैठा जाए। कुछ समय के लिए तो हम सभी अनिशा को भूल चुके थे। लेकिन जैसे ही हम आगे बढ़ने लगे तो एक आदमी ने हमें धक्के देकर बाहर भगा दिया।

हम शर्मिंदा होकर बाहर आ गए। हम सभी बहुत थक चुके थे। हम सभी ने घर जाने का फैसला किया। और घर चल दिए। थके होने के कारण जाते ही सो गए।

मैं बहुत गहरी नींद में थी। मुझे अनामिका ज़ोर-ज़ोर से हिला-हिलाकर उठा रही थी। जब आँख खुली तो वह अनामिका नहीं अनिशा थी। उसने मुझे उठाया और कमरे में ले जाकर दरवाज़ा बन्द कर दिया।

(दस साल की ज्योत्सना पाँचवीं में पढ़ती हैं और दक्षिणपुरी, दिल्ली में रहती हैं। पिछले एक साल से अंकुर लर्निंग कलेक्टिव से नियमित जुड़ी हुई हैं।)

पानी को पानी की गठरी में बाँध दिया
कपड़े को कपड़े की गठरी में
पानी की गठरी है तालाब
कमल गठानें हैं
- विनोद कुमार शुक्ल

फोटोग्राफर

कुछ स्कूली बच्चों से बातचीत करते हुए मैं उन्हें अपने शौक बता रहा था। मन में आया, बताऊँ कि नहीं, मैं एक छायाचित्रकार भी हूँ। मन की तस्वीरें लेने वाला एक फोटोग्राफर। केवल अपने मन की तस्वीरें लेने वाला।

मुझे याद है कि पहली बार मैंने कैमरा उठाया तब मैं पाँचवीं या छठी कक्षा में था। पिताजी एक पुराना रोलिफ्लेक्स कैमरा खरीद लाए थे जिसका ऊपर का ढक्कन खोलने पर एक खुला डिब्बा-सा बन जाता था। उसमें झाँकने पर सामने का नज़ारा दिखाई देता था। मगर मेरी पहली तस्वीर मैंने उससे कई वर्ष पहले उतारी हुई याद आती है। शायद तब मैंने स्कूल जाना शुरू ही किया था। कुछ तस्वीरें मैंने दोस्तों को दिखाईं, कुछ के प्रिंट अभी निकाले नहीं हैं। निगेटिव अलबत्ता सभी साबुत हैं। पचास वर्ष से ऊपर हो गए तब भी।

मेरी रोज़ी लिखने और चित्र बनाने से चलती है। इन कामों में फोटोग्राफी मेरे बहुत काम आती है। एक बार सम्पादकजी ने कहा कि आप अपनी एक "चित्रकार की डायरी" लिख दीजिए। मैंने कुछ पुराने प्रिंट निकाले और तुरन्त उन चित्रों को देख कर तफसील से एक रोज़नामचा लिख डाला। मैं जो भी करता हूँ उसमें यह फोटोग्राफी मेरा काम बड़ा आसान कर देती है। फिर इतने काम की चीज़ मैंने उन छात्रों को क्यों नहीं बताई? अव्वल तो यह फोटोग्राफी ऐसी नहीं कि सिखाई जा सके। इसके गुर उन छात्रों के माता-पिता को ही सीखने होंगे। कई जानते होंगे और अनजाने में उसका प्रयोग करते भी होंगे, जैसे मेरे पिताजी ने किया।

मैं मन का

दिलीप चिंचालकर

सारे माता-पिता अपने बच्चों को हमेशा कुछ ना कुछ बताते रहते हैं, समझ की बातें। यह हमेशा इतना हमेशा हो जाता है कि हम सुनने वाले उनसे उकता जाते हैं। मुझे भी सुनना पड़ता था। खीज तो तब होती थी जब मुझे सिनेमा देखने जाना होता और पिताजी अपनी बात शुरू कर देते थे। खर्च के लिए रुपए पाने की यह बिना बोली शर्त हुआ करती थी। पन्द्रह मिनट मैं उनकी बात धीरज के साथ सुनता। सुनता क्या, एक कान से सुन कर दूसरे से निकाल देता। पिताजी भी पिताजी ही थे। वे खूब जानते थे कि एक हवा पीकर उछलता छोकरा कब उनकी बात सुनेगा ही। उन्होंने ऐसे कई मौके भुनाए। मेरे साथ यह क्या हो रहा था इसकी समझ मुझे कई वर्षों बाद आई।

मैं परदेस में था और असमंजस में। तब टेलीफोन आम नहीं थे और चिट्ठी-पत्री में आसानी से एक पखवाड़ा लग जाता था। जिसे दोराहा कहते हैं, मैं उस पर खड़ा था। मैं अपनी समझ से फैसले लेता रहा और ज़िन्दगी की पटरी बदलकर दूसरी राह पर चल पड़ा। ना बदलता तो आज कहाँ होता यह और बात है। मगर जिस मुकाम पर पहुँचा वह ठीक ही रहा। घर लौटने पर मैंने पिताजी को उन दिनों की सारी बातें बताईं। तब उन्होंने कहा, जो बातें वे कहते थे और मैं अनसुना करता था, वे सारी बेकार नहीं गईं। मेरे दिमाग की फिल्म पर पूरे समय चित्र उतरते रहे (फिल्म एक्सपोज़ होती रही) और जब परदेस में ठीक रसायन और वातावरण मिले, वह धुल (डेवलप हो) गई। तमाम छवियाँ (इमेज) स्पष्ट दिखाई देने लगीं।

एक्सपोज़र बेकार नहीं जाते। ऊपर का ढक्कन खुला रखो ना रखो, देर से ही सही प्रिंट सबके निकल आते हैं।

चित्र : दिलीप चिंचालकर

एक नायाब शिल्प
उपवास में बुद्ध

अशोक भौमिक

अगर हम किसी पेंटिंग या शिल्प को बहुत ध्यान से देखें तो धीरे-धीरे उसकी खूबियाँ खुद-ब-खुद खुलने लगती हैं। चलो, इस बार एक अद्‌भुत मूर्ति के साथ कुछ समय बिताते हैं। इस मूर्ति के बारे में अन्य जानकारियाँ तुम पुस्तकों से, शिक्षकों से या इंटरनेट से ढूँढ लेना...

उपवास में बुद्ध

लाहौर के संग्रहालय की शायद सबसे प्रसिद्ध मूर्ति "उपवास में बुद्ध" है (देखें चित्र 1)। मूर्ति एक ध्यान-मग्न सन्यासी की है। उस सन्यासी की कहानी को जाने बगैर उसके लम्बे समय से भूखे रहने को, उसके कमज़ोर-बूढ़े शरीर को देखकर समझा जा सकता है। धँसी आँखें, गले की उभरी हुई हड्डी, बढ़ी हुई दाढ़ी सहज ही हमारा ध्यान खींच लेती है (देखें चित्र 2)। फिर हमारा ध्यान मूर्ति के माथे के बीचोंबीच लगी बिन्दी के साथ-साथ माथे, माथे की नसों के उभार पर भी चला जाता है। तपस्या में लीन यह व्यक्ति बूढ़ा ज़रूर दिखता है पर उसके मानसिक रूप से दृढ़ व्यक्तित्व के बारे में कोई सन्देह नहीं हो सकता है। इसे उसके तीखे नाक, बन्द होंठ दाढ़ी-मूछों के घुँघराले बालों और चेहरे पर फैले आत्मविश्वास से ही मूर्तिकार ने सम्भव बनाया है।

सीने पर उभरी पसलियों की कतार के अलावा हड्डियों से बना एक चौकोर ढाँचा है जो सीने के सबसे ऊपरी हिस्से और पीठ के ऊपरी हिस्से को जोड़ता है। इस ढाँचे के साथ गले की तनी हुई माँसपेशियाँ मूर्ति के चेहरे का एक आधार बनाती हैं जिससे यह व्यक्ति कमज़ोर पर दृढ़ लगता है। बैठने की मुद्रा में तनाव से उसकी दृढ़ता और साफ समझ में आती है। और कुछ देर तक यूँ ही देखने से मूर्ति के बुढ़ा चुके हाथ-पैर कमज़ोर नहीं लगते। इस महान मूर्ति की ऐसी ही कई खूबियाँ हैं जो धीरे-धीरे हमारे सामने खुलती हैं।

चित्र 1

चित्र 2

मूर्ति के पूरे शरीर में बस हड्डियों के ढाँचे पर मानो चमड़ी चढ़ी हुई है। उभरे हुए सीने पर झलकती पसलियाँ आसानी से गिनी जा सकती हैं। हमारे शरीर में पाई जानेवाली पसलियों से ये कहीं ज़्यादा हैं। यहाँ मूर्तिकार ने किसी मकसद से पसलियों को अधिक संख्या में दिखाया है। पर इस वजह से इस व्यक्ति की शारीरिक स्थिति और ज़्यादा गम्भीर दिखती है। मूर्तिकार का यह प्रयोग इतना प्रभावशाली है कि शरीर-विज्ञान के जानकार लोगों की पैनी नज़र से भी मूर्ति का यह अस्वाभाविक पहलू शायद छूट जाए। पीठ के निचले हिस्से से दोनों हाथों की कोहनियों को छूकर गुज़रने वाली चादर ने, सामने से मूर्ति के पाँवों को ढँक रखा है। इस चादर की समानान्तर परतों और पसलियों के बीच एक अद्‌भुत लय है। मूर्तियों में ऐसी लयात्मकता कम ही दिखाई देती है।

लाहौर संग्रहालय की गौतम बुद्ध की यह मूर्ति 200 ईसा पूर्व के गांधार काल की है। मूर्ति की ऊँचाई 87 सेंटीमीटर है और इसे पत्थर को तराशकर बनाया गया है। हम जानते हैं कि गौतम बुद्ध ने लम्बे समय तक घोर तपस्या की थी। बोधगया (बिहार) में उन्होंने बोधि वृक्ष के नीचे बैठकर लम्बा उपवास किया था। यह मूर्ति उस उपवास पर ही बनी है ।

बोधगया से ज्ञान प्राप्त करने के बाद बुद्ध ने पहली बार अपने शिष्यों को सारनाथ (उत्तर प्रदेश) में उपदेश दिया था। इस मूर्ति के आधार पर (देखें चित्र 3) उस उपदेश का उल्लेख स्पष्ट दिखता है।

यह मूर्ति हमें आज से 2200 वर्ष पहले के मूर्तिकारों की रचनात्मकता का कायल बना देती है। उन्होंने एक ही मूर्ति में न केवल बुद्ध के उपवास को दिखाया है बल्कि उपवास के बाद अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए भी उसी एक मूर्ति में दिखाया है। यहाँ दो बातें गौरतलब हैं। एक, उपवास और पहले उपदेश के बीच के समय का अन्तर और दूसरा उपवास स्थल (बोधगया) और उपदेश देने के स्थान (सारनाथ) के बीच की भौगोलिक दूरी, दोनों को मूर्तिकार ने किस आसानी से एक ही मूर्ति में सहजता से दिखाया है।

मूर्तिकला के इतिहास में ऐसे उदाहरण कम ही हैं।

(अगले अंक में गौतम बुद्ध के उपवास से जुड़ी दो और ऐतिहासिक मूर्तियों को देखेंगे-समझेंगे)

चित्र 3

नाचघर की छठी किस्त

द लास्ट ग्लिम्प्स

प्रियम्वद

शाम को रोशनदान से चिपका मोहसिन, गलियारे में रोशनी की लकीर का इन्तज़ार कर रहा था। बड़ी होती परछाई के साथ उसकी उदासी भी बड़ी हो रही थी।

नाचघर की दीवारों पर मोटी, हरी काई जमी थी। छत का फर्श चटका हुआ था। कंगूरों पर कबूतरों की बीट पड़ी थी। दीवार की ईंटों का प्लास्टर उखड़ा हुआ था। सीलन, नमक और बारिश ने ईंटों के बीच बड़ी दरारें बना दी थीं। उनमें छोटे-छोटे पौधे उग आए थे। रोशनदान के चारों ओर धूल और मकड़ी के जाले थे।

“कम्बख्त सर्दियाँ।” मोहसिन बुदबुदाया। “दिन को कितनी जल्दी निगल लेती हैं।” उसने अभी पूरी तरह से न आई हुई सर्दियों को कोसा। उसने अकसर अम्मी को मौसमों को कोसते हुए सुना था। उसके कोसने का असर हुआ। गलियारे में रोशनी की लकीर आ गई। मोहसिन रोशनदान के अन्दर घुस गया। लाजवन्ती गलियारे में दिखी। उसे देखते ही वह सीढ़ी पर कूद गया। नीचे आया। दोनों फर्श पर बैठ गए। फर्श का वह कोना अब उनके बैठने की तय जगह बन चुका था।

“कभी कोई ज़रूरी बात हो तो क्या मैं तुम्हारे घर नहीं आ सकता?” मोहसिन ने पूछा।

“तुम जहाँ से जाते हो वह घर का रास्ता नहीं है। वह तो पीछे का आँगन है। रास्ता दूसरी तरफ है।” लाजवन्ती बोली।

“किधर?”

“नदी घाट जानेवाले रास्ते पर। हम उधर की सीढ़ियों से ऊपर आते हैं। साथ में दादाजी का कमरा है। पुराने लोग सीधे ऊपर आ जाते हैं। जब कोई नया आता है तो दादाजी के कमरे में आना होता है। तब वह सिरहाने रखी बेल बजाते हैं। इसका मतलब हममें से किसी को बुला रहे हैं। फिर कोई नीचे आता है। तुम्हें पहले दादा जी के कमरे में आना होगा।”

“मैं कह दूँगा तुमसे मिलना है।”

लाजवन्ती ने एक क्षण सोचा।

“हाँ... कह देना मेरे साथ पढ़ते हो।”

“और नाम...?”

लाजवन्ती ने फिर कुछ देर सोचा।

“दादाजी को तो मोहसिन बता सकते हो। उनके कई मुसलमान मरीज़ हैं। जब वह रावण बनते थे तब के मुसलमान दोस्त भी हैं।”

“ज़रूरी है बेल बजाने पर तुम ही आओ?”

“नहीं... कोई भी हो सकता है।”

“तब... वही आँगन में कभी देख लें तो?”

“नहीं... मोहन ही बताना।” कुछ देर सोचने के बाद लाजवन्ती धीरे-से बोली, “यह सब झूठ अच्छा नहीं है।” उसने मोहसिन को देखा।

“हाँ, बिलकुल अच्छा नहीं है...”

“ऐसा क्यों है?” लाजवन्ती बोली।

“पता नहीं।” मोहसिन बोला।

कुछ देर दोनों चुप रहे। “छोड़ो... तुम पीपल के पास किसी से पूछ लेना वैद्यजी कहाँ रहते हैं। सब जानते हैं।”

“ठीक है...।” मोहसिन ने सिर हिलाया।

“क्या ज़रूरी बात थी?” लाजवन्ती ने पूछा।

मोहसिन ने अपनी दोनों हथेलियाँ जोड़ीं, “सूँघो।” उसने हथेलियाँ आगे बढ़ाईं। लाजवन्ती ने सूँघा।

मोहसिन ने लाजवन्ती को अपने अन्दर रुकी सुबह के बारे में बताया और बताया कि जब मरे हुए बच्चे को सामने रखते हैं तब भैंस के थनों में दूध आता है। आठ बरगद और कुएँ के बारे में बताया जिसमें दो सौ बीस अँग्रेज़ औरतों-बच्चों की लाशें पड़ी हैं। बरगद पर लटके चमगादड़ों के बारे में बताया। यह भी कि सगीर बाशा कहते हैं कि ये कुएँ में पड़े लोगों की रूहे हैं जो आज तक भटक रही हैं। रोती हुई परी के बारे में बताया। चिड़िया के बच्चे के बारे में बताया। फिर लाजवन्ती ने उसे बताया कि सोनख्वाब गाँव में उसकी नानी बीमार है। तीन दिन बाद माँ उन्हें देखने जाएँगी। वह भी माँ के साथ जाएगी। यह भी बताया कि परसों मन्नतवाले दिन माँ नानी के लिए दरगाह पर चादर चढ़ाने जाएँगी।

"मेरा घर वहीं है।" मोहसिन बोला, "दरगाह से दिखता है।"

"सच?"

"हाँ... मज़ार की तरफ पीठ करके देखो तो सामने पीली इमारत दिखती है। उसी में तीसरी मंज़िल पर दिखेगा। लोहे की सलाखोंवाली बड़ी खिड़की मेरे कमरे की है। वहाँ से मैं तुम्हें देख सकता हूँ।"

"मैं माँ के साथ आऊँगी।" लाजवन्ती ने कहा।

"मैं तुम्हें दरगाह पर मिलूँगा। जानती हो... सर्दियों में शुरू के दो महीनों में जब पूरा चाँद होता है, मेरा कमरा चाँदनी से भर जाता है। धीरे-धीरे चाँद के ऊपर आने के साथ चाँदनी बढ़ती जाती है...बढ़ती जाती है। कमरे में भरती जाती है। किसी गुब्बारे की तरह कमरा फूलता जाता है। लगता है चाँदनी में फट जाएगा...धड़ाम।" मोहसिन ज़ोर की आवाज़ करता हुआ फर्श पर लोट गया।

"फिर?"

"फिर पूरे कमरे में चाँदनी फैलती जाती है... बाढ़ के पानी की तरह।" मोहसिन फर्श पर लोटता हुआ बोला।

"हर...हर...हर...हर..." लाजवन्ती हँसी।

चित्र : प्रशान्त सोनी

रिकॉर्ड मैंने नहीं तोड़ा

(पेज 23 का शेष भाग)

रिकॉर्ड बनाया, उससे बहुत अधिक इनिंग्स में गावसकर ने वह रिकॉर्ड बनाया, यह जानकारी भी मुझे गावसकर के बयान से ही मिली। यदि मैं ब्रैडमैन का रिकॉर्ड तोड़ने जाता, तो मुझे टेस्ट मैचों की कोई तीन सौ इनिंग्स खेलनी पड़तीं। कुल मिलाकर जो मैंने खेला है, वह नेट प्रैक्टिस है, टेस्ट मैच नहीं। मैं सदा नेट प्रैक्टिस का ही मज़ा लेता।

यह ठीक ही हुआ कि मैंने ब्रैडमैन का रिकॉर्ड तोड़ने का प्रयत्न नहीं किया। पहले तो वह टूटता नहीं और टूट जाता, तो गावसकर क्या करता? मेरी अनुपस्थिति से उसे जीवन का एक लक्ष्य मिल गया। यूँ भी मुझमें और गावसकर में खिलाड़ी के नाते बड़ा फर्क है। वह नई बॉल पर आउट होता है, मैं पुरानी पर ही हो जाता हूँ। कई बार वह नई पर भी नहीं होता। मैंने नई बॉल ओपनर के बावजूद नहीं देखी। हमारे पास एक ही बॉल थी, जिसे हम अपनी निकरों पर निरन्तर कई महीनों तक घिस-घिसकर चमक बनाए रखते थे। जब एक गेंद खो जाती, तब खेल दस-बारह दिनों के लिए रुक जाता, क्योंकि नई गेंद के लिए चन्दा करने में वक्त लगता था। परिस्थितियाँ कठिन थीं। ब्रैडमैन का रिकॉर्ड तोड़ने जाता, तो पता नहीं खुद कितनी जगह से टूटता। पर मैं परिस्थितियों को दोष नहीं दूँगा। कारण निजी थे और अधिकतर दार्शनिक थे।

आज जो भी खिलाड़ी या गैर खिलाड़ी स्वयं से प्रश्न कर रहा होगा कि उसने ब्रैडमैन का रिकॉर्ड क्यों नहीं छुआ, तो उसके उत्तर मेरे उत्तरों से मिलते-जुलते होंगे। हम उसी लुगदी के बने हैं। जिस पर कविता-संकलनों की छपाई होती है। गेंद पीटने के लिए अधिक दम की ज़रूरत होती है। वह होता, तो भारतीय क्रिकेट क्या भारतीय प्रजातंत्र की भी अनेक समस्याएँ सुलझतीं, कई रिकॉर्ड टूटते।

(यथासम्भव से साभार)

"मैं अम्मी से कहकर एक बढ़िया चादर बनवा दूँगा।" मोहसिन उठ गया। "तुम उसे चढ़ाना। तुम्हारी नानी ज़रूर अच्छी हो जाएँगी।"

"क्यों?"

"अम्मी ज़री के साथ-साथ अपनी दुआएँ भी काढ़ देती हैं। अल्लाह उनकी सुनता है।"

लाजवन्ती कुछ देर सोचती रही, "नहीं...तुम मत मिलना। माँ तुम्हें देख लेंगी। कभी आँगन में देख लिया तो पहचान लेंगी।"

"फिर...?" मोहसिन उदास हो गया।

"फिर क्या?"

मोहसिन कुछ देर सोचता रहा।

"...ठीक है...मैं चादर सगीर बाशा की दुकान पर रख दूँगा। नीले रंग की। तुम वही चादर लेना। वहाँ किसी से भी सगीर बाशा की दुकान पूछ लेना।"

"तुम कमरे की खिड़की से देखना। मैं तुम्हें देखूँगी।"

"ठीक है।" मोहसिन ने सिर हिलाया।

"फिर मैं सोनख्वाब गाँव चली जाऊँगी।" लाजवन्ती धीरे-से बोली।

"कितने दिन?"

"जब तक नानी ठीक नहीं होतीं...। शायद दस बारह दिन।"

"और स्कूल?"

"माँ प्रिंसिपल से बात करेंगी। कुछ हो जाएगा।"

"फिर?"

"फिर क्या?"

मोहसिन चुप हो गया। लाजवन्ती भी कुछ देर चुप रही।

"मैं तुम्हें वहाँ से चिट्ठी लिखूँगी।"

"सच?"

"हाँ।"

"मैं तुम्हें अपना पता देता हूँ।" मोहसिन के पास लिखने के लिए कुछ नहीं था। उसने इधर-उधर देखा। लाजवन्ती ने उसे फर्श पर पड़े कुछ टूटे, भूरे पत्थर के टुकड़े दिखाए। मोहसिन उठा। उसने फर्श पर पड़ा एक टुकड़ा उठाया। उसे फर्श पर घिसा। सीलनवाली लकड़ी पर कुछ निशान बने। पत्थर भुरभुरा कर मिट्टी का हो गया।

"तुम याद कर लो न।" वह लाजवन्ती के पास आकर बैठते हुए बोला।

"ठीक है...बोलो।"

मोहसिन बोलते-बोलते रुक गया।

"भूल गईं तो? मैं दरगाह पर दूँगा।"

"कैसे?"

"तुम जेब वाली फ्रॉक पहनना। मज़ार जाते समय हाथ पीछे कर लेना। मैं उसमें कागज़ रख दूँगा। उस पते पर लिखना। खोना मत।"

"ठीक है... मैं याद भी कर लूँगी।"

"कितने बजे आओगी?"

"स्कूल के बाद...चार बजे।"

"देखो..." अब मोहसिन खुश था। उसने जेब में हाथ डाला। एक छोटी-सी डिबिया निकाली।

"क्या है?"

"सुरमेदानी...इसमें सुरमा है। लगाने पर अँधेरे में भी दिखता है।"

"झूठ।"

"सच...अभी हम लगाकर गलियारे में चलेंगे। वहाँ सब दिखेगा।"

मोहसिन ने डिबिया खोली। एक उँगली से सुरमा

"मैं तुम्हें अपना पता देता हूँ"
"हम तो बिना पते के ही पहुँच जाते हैं।"

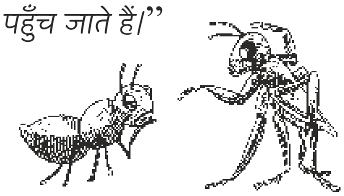

अपनी दोनों आँखों में लगाया। लाजवन्ती की तरफ उँगली बढ़ाई फिर रुक गया।

"नहीं... तुम्हारी आँखों का रंग कत्थई है। सुरमेवाले ने सिर्फ काली आँखों में लगाने के लिए कहा था।"

"मुझे ऐसे भी नहीं लगाना। दिखेगा।"

मोहसिन ने डिबिया जेब में रख ली।

"चलो... देखते हैं।" वह उठ गया। लाजवन्ती भी। दोनों हाथ पकड़कर गलियारे में आए। गलियारे में अँधेरा ही रहता था। अन्दर कमरों में भी कोई रोशनदान नहीं था। खिड़कियाँ बन्द थीं। हॉल की रोशनी की छूटी हुई रोशनी ही उसमें आती थी।

दोनों पुराने सामान के कमरे में आए। वहाँ तीन सन्दूक रखे थे। एक सन्दूक पर लाल चादर पड़ी थी। मोहसिन फर्श पर बैठ गया। उसने सन्दूक का ढक्कन हिलाया। उसकी कुण्डी टूटी थी! ढक्कन खुल गया। लाजवन्ती भी झुकी हुई देख रही थी। अन्दर पुराने अखबारों की कटिंग थी। उनमें नाचघर की तस्वीरें थीं। नाचनेवालों की तस्वीरें थीं। इनाम देने और लेनेवालों की तस्वीरें थीं। तस्वीरों में नदी में पालवाली नावों के पीछे पुराना शहर, पुराना नाचघर था। बड़े बालों वाले विग और चमकदार लम्बे कोटवाले अँग्रेज़ अफसरों के साथ अचकन पहने नवाब, राजा थे। दावतों के चित्र थे जिनमें बड़ी मूँछों और पगड़ीवाले देशी नौकर मेज़ पर खाना लगा रहे थे। बोतलें खोल रहे थे... पंखे की रस्सी खींच रहे थे। रोशनी में चमकते नाचघर के दरवाज़े पर तरह-तरह की बग्घियाँ थीं, घोड़े थे। नाचघर की दीवारों के ऊपरी हिस्सों में नाचते हुए आदमकद बुतों की तस्वीरें थीं। अखबारों की इन कटिंग के नीचे एक चित्र रखा था।

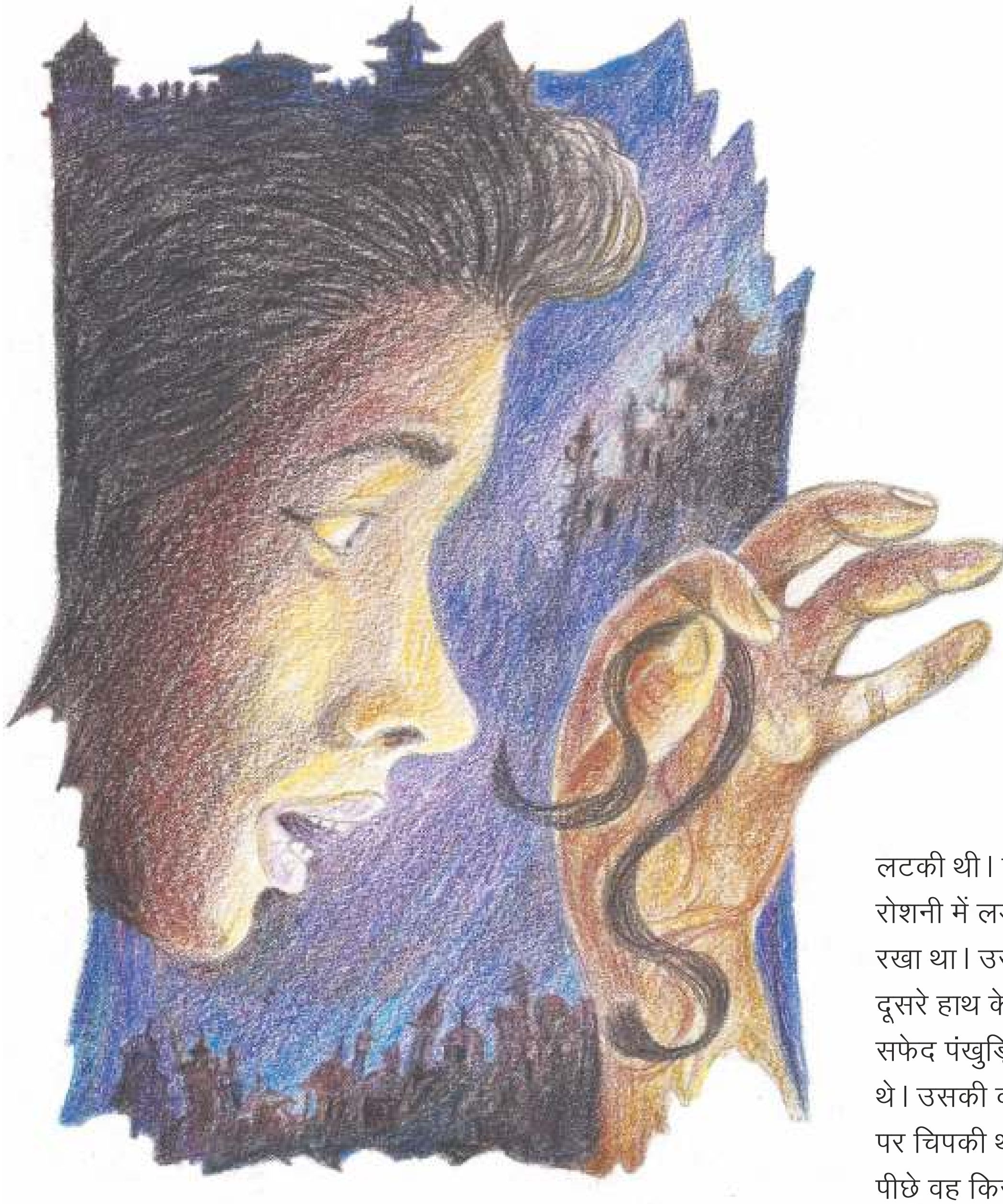

मोहसिन ने उसे उठाया। कई रंगों वाला एटलस की साइज़ का चित्र था। बलूत (ओक) की लकड़ी के फ्रेम में जड़ा था।

"किसका है?" लाजवन्ती उसके कन्धे के ऊपर फुसफुसाई।

"हॉल में देखते हैं।" मोहसिन उठ गया।

"क्यों...? सुरमे से नहीं दिख रहा?"

मोहसिन ने लाजवन्ती को घूरा, "अभी ताज़ा है...।"

दोनों हॉल में पियानो के पास आ गए। वहाँ सबसे ज़्यादा रोशनी थी। वह एक बहुत सुन्दर लड़की का चित्र था। तेल के रंगों से बना हुआ। चित्र में दीवार पर खूँटे से एक जलती हुई लालटेन लटकी थी। मेज़ पर उसकी रोशनी थी। उस रोशनी में लड़की का उदास चेहरा मेज़ पर रखा था। उसके एक हाथ में छोटी कंघी थी। दूसरे हाथ के पास मेज़ पर नारंगी डण्ठल, सफेद पंखुड़ियों वाले हरसिंगार के फूल पड़े थे। उसकी कत्थई पुतलियाँ आँखों के कोनों पर चिपकी थीं। दीवार के कोने या खिड़की के पीछे वह किसी को देख रही थीं। यह देखना किसी को आखरी बार देखने की तरह था। इसमें दुख की एक कौंध थी। ठहरी, ठण्डी, काँपती हुई...झील के ऊपर चाँदनी की तरह। उसके चेहरे के चारों ओर खुले... घने बाल थे। चित्र का शीर्षक था "द लास्ट ग्लिम्प्स"। (आखरी झलक)

"कौन है यह?"

"पता नहीं।"

"देखो..." मोहसिन फुसफुसाया। "ये बाल बिलकुल उस लट की तरह हैं।"

"हाँ..." लाजवन्ती ने देखा। "लट इसी

लड़की की थी।" लाजवन्ती बोली। मोहसिन ने चित्र को पलटा। पीछे की तरफ मोटी स्याही से कई पंक्तियाँ लिखी थीं। स्याही धुँधली पड़ गई थी, फिर भी पढ़ा जा सकता था। मोहसिन ने उलटा चित्र पियानो पर रख दिया। अब दोनों पढ़ सकते थे। ये दो छोटी कविताएँ थीं। दोनों की राइटिंग अलग थी। दो अलग लोगों ने लिखी थीं। पर एक ही समय पर, एक ही कलम और एक ही स्याही से लिखी थीं। एक साथ लिखी थीं। एक दूसरे के लिए लिखी थीं। मोहसिन ने पहली कविता पढ़ी –

"*मेरी प्रिय तू सुन्दर है, तू सुन्दर है*

तेरी आँखें तेरी लटों के बीच कबूतरों-सी दिखती हैं

तेरे बाल उन बकरियों की तरह हैं

जो हरे पहाड़ की ढाल पर लेटी हुई हों

तेरे दाँत उन ऊन कतरी हुई भेड़ों की तरह हैं

जो नहाकर ऊपर आई हैं..."

लाजवन्ती ने दूसरी कविता पढ़ी –

"*मैं तुमसे मृगछौनों की कसम लेकर कहती हूँ*

जब तक प्रेम अपने आप न जन्मे

तब तक उसे न उकसाओ न जगाओ।"

"कौन है यह?" लाजवन्ती फुसफुसाई।

"और किसने कविताएँ लिखी हैं?" मोहसिन बुदबुदाया।

"बालों की लट ज़रूर इसी की थी।" लाजवन्ती बोली, "और यह लैम्प नाचघर में रखा है।" मोहसिन बोला, "दूसरी सन्दूक खोलें?" उसने लाजवन्ती को देखा। "उनमें भी कुछ होगा।"

"आज नहीं..." लाजवन्ती बहुत धीरे-से बोली। "मेरे लौटकर आने के बाद।"

"ठीक है।" मोहसिन ने चित्र अपने एक हाथ के नीचे दबा लिया। लाजवन्ती ने देखा पर कुछ बोली नहीं।

सीढ़ियों से होते हुए दोनों ने आँगन पार किया। दरवाज़े पर आए।

"परसों....चार बजे।" मोहसिन ने कहा। लाजवन्ती ने सर हिलाया। मोहसिन चला आया। लाजवन्ती भी चली गई। नाचघर ने पीछे से उन्हें आवाज़ दी। वह भी उन्हें बहुत कुछ बताना चाहता था। पर दोनों जा चुके थे।

घर आकर मोहसिन ने पलँग के नीचे से अपना छोटा सन्दूक निकाला। खोला। कोने में बालों की लट की डिबिया रखी थी। हरसिंगार के सूखे फूल थे। ये वैसे ही फूल थे जैसे चित्र में थे। गिनती में भी उतने ही थे जितने चित्र में थे। डिबिया खोलकर उसने लट उठाई। चित्र में लड़की के बालों पर रखी। लट उसमें खो गई। लट उसी की थी। यह उसी तरह खोई थी जैसे लाजवन्ती के बालों में खो गई थी। मोहसिन ने लट वापस डिबिया में रख दी। सन्दूक में चित्र रखा। उसके काँच के ऊपर डिबिया। उसके पास हरसिंगार के फूल। पूरा सन्दूक दमपुख्त में पड़े केसर की गन्ध से भर गया था! सन्दूक बन्द करके उसने उसे ढकेला और पलँग के नीचे कर दिया। उसका बदन काँप रहा था।

मेरा पन्ना

बारिश का सन्नाटा

बारिश का दिन आया
सन्नाटा छाया
बारिश आँधी ले लाई
पेड़ों को हानि पहुँचाई
पूरे गाँव में कीचड़ है फैला
मुश्किल से घरों से अब निकलना
जब अन्दर घर के पानी आता
गरीबों की मुश्किल और बढ़ाता
देखो फिर बारिश का दिन आया
चारों तरफ सन्नाटा छाया है

—सुनील कुमार, सातवीं, भरौली, उ. प्र.

छुट्टी के दिन

खुशियाँ लेकर आ जाते हैं
छुट्टी के दिन
क्या-क्या खेल खिला जाते हैं
छुट्टी के दिन
मम्मी डाँट लगाती रहतीं
पापा अकसर आँख दिखाते
इतनी गरम लू चलती है
बाहर जाकर खेल न पाते
मुट्टू माँगे गेंद और बल्ला
मुट्टू कहे कहो कहानी
घरवालों पर मँहगी पड़ जाती
दो बच्चों की माँग निभानी
पढ़ना-लिखना, लिखना-पढ़ना
होमवर्क की आफत भारी
लो स्कूल घुस गया घर में
भोले बच्चों की लाचारी
दास-दासी बन जाते हैं
छुट्टी के दिन
क्या-क्या खेल खिला जाते हैं
छुट्टी के दिन
मेहमानों के बच्चे आते लेकर
अपने सपने सलोने,
बच्चे न खेल खिलौने
पढ़े किताबें पड़े खिलौने

—नियति जैन, छठी, देवास म. प्र.

— रिचा पाण्डे, आठवीं, विद्याज्ञान स्कूल सीतापुर, उ. प्र.

— *कुमकुम शाक्या, आरुषि, भोपाल, म. प्र.*

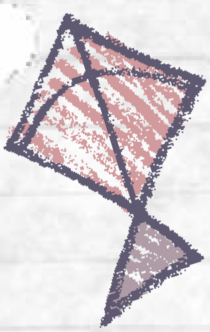

हजारे के फूल

एक बार एक हजारे (गेंदे) का पौधा था। उसके फूलों से खुशबू आ रही थी। एक राजा उसी रास्ते से होकर खवा गाँव में मीटिंग करने जा रहा था। हजारे के फूलों की खुशबू राजा के पास भी पहुँची। राजा को वह खुशबू अच्छी लगी। राजा उस महक को सूँघता हुआ हजारे के पास आ गया और हजारे को हाथ लगाने लगा। वहाँ एक बोर्ड लगा हुआ था। उस पर लिखा हुआ था फूल तोड़ना पाप है, मेड़ी के पीछे साँप है। राजा ने उसे पढ़ा और हँसने लगा। उसने पौधे से कहा, "अरे तू तो है एक पौधा और मैं हूँ एक राजा। चाहूँगा जब तुझे तोड़कर ले जाऊँगा।" यह बात कहकर राजा चला गया। राजा की यह सारी बात एक मोटा आदमी सुन रहा था।

राजा मीटिंग में से आया तो रास्ते में उस हजारे के फूल तोड़ने लगा। तभी मोटा आदमी बोला, "अरे राजा, अगर तूने फूल तोड़े तो मैं तेरी जान ले लूँगा।" ये बात सुनकर राजा को क्रोध आ गया। वह उस मोटे आदमी से लड़ने लगा। मोटा आदमी राजा के ऊपर चढ़ गया और राजा की राबड़ी काट दी। (खाया पिया निकाल देना) हजारे के फूल अब भी हवा में झूम रहे थे। उनसे वैसी ही खुशबू आ रही थी।

—रामवीर गुर्जर, ग्यारह वर्ष, जगनपुरा, सवाई माधोपुर, राजस्थान

मेरी मम्मी मेरे पापा

नेहा

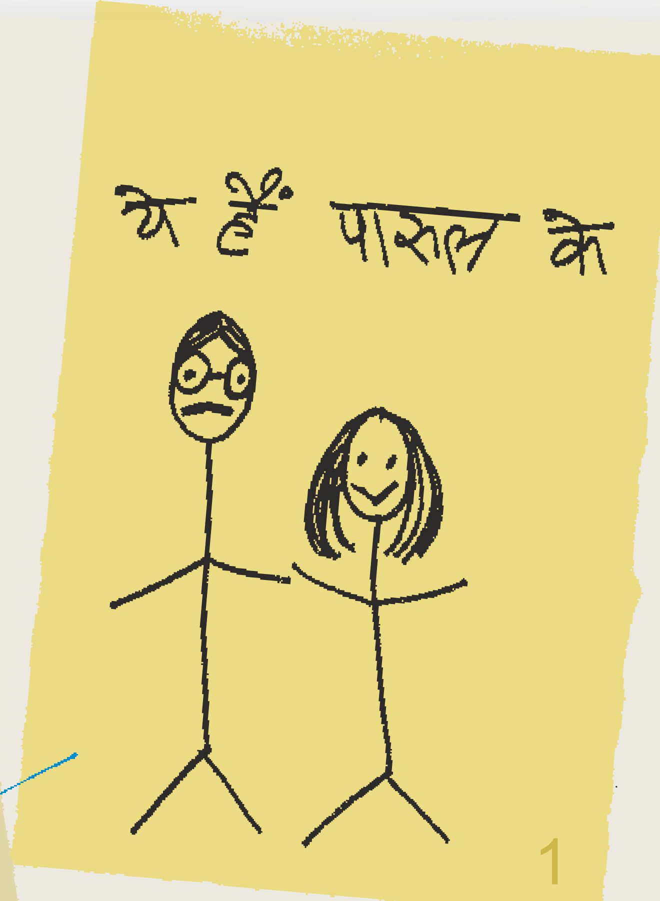

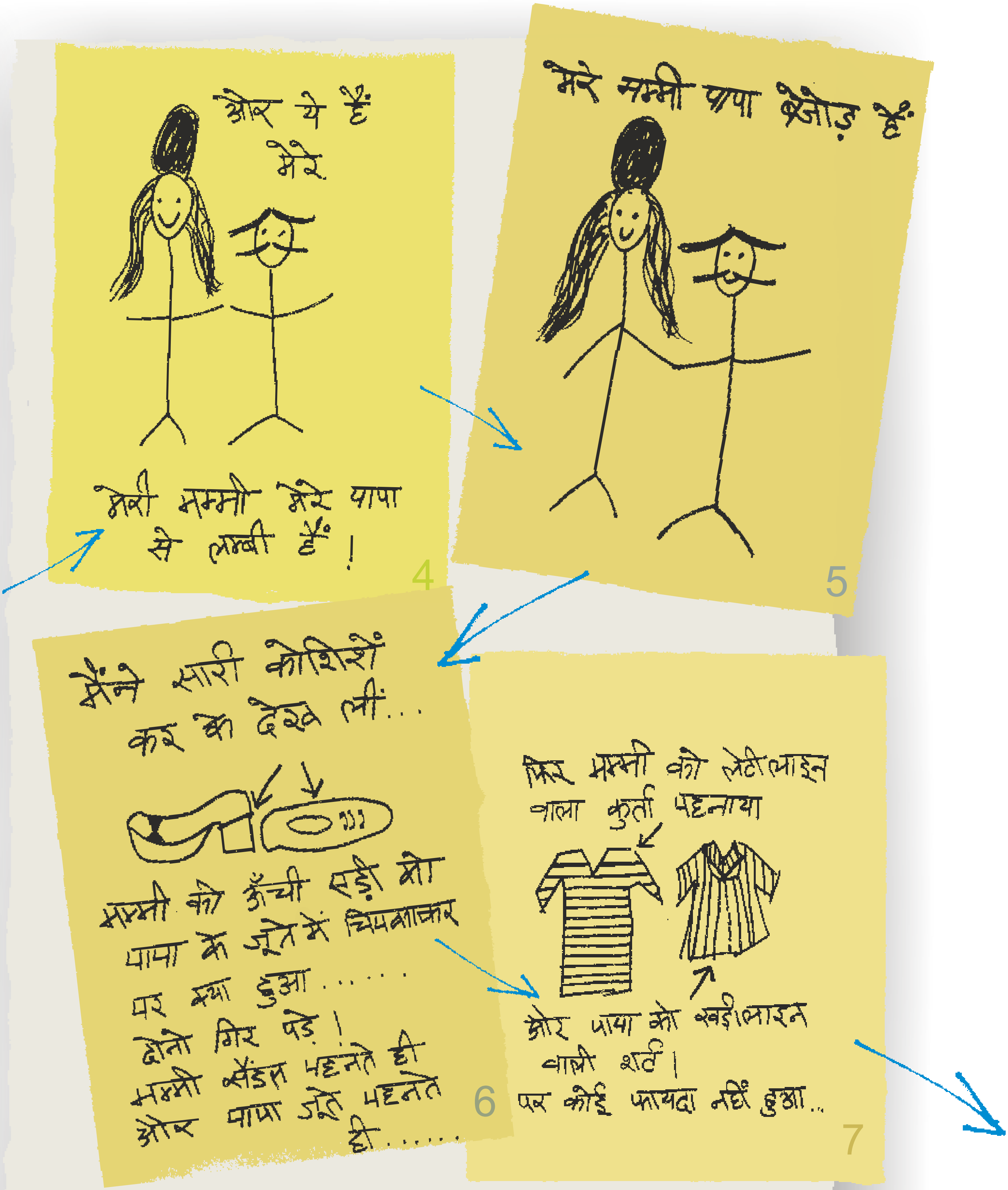
और ये हैं मेरे
मेरी मम्मी मेरे पापा से लम्बी हैं!
4
मेरे मम्मी पापा बेजोड़ हैं
5
मैंने सारी कोशिशें कर के देख लीं...
मम्मी को ऊँची एड़ी को पापा के जूते में चिपकाकर
पर क्या हुआ......
दोनों गिर पड़े!
मम्मी सैंडल पहनते ही और पापा जूते पहनते ही......
6
फिर मम्मी को लेटी लाइन वाला कुर्ता पहनाया
और पापा को खड़ी लाइन वाली शर्ट।
पर कोई फायदा नहीं हुआ..
7

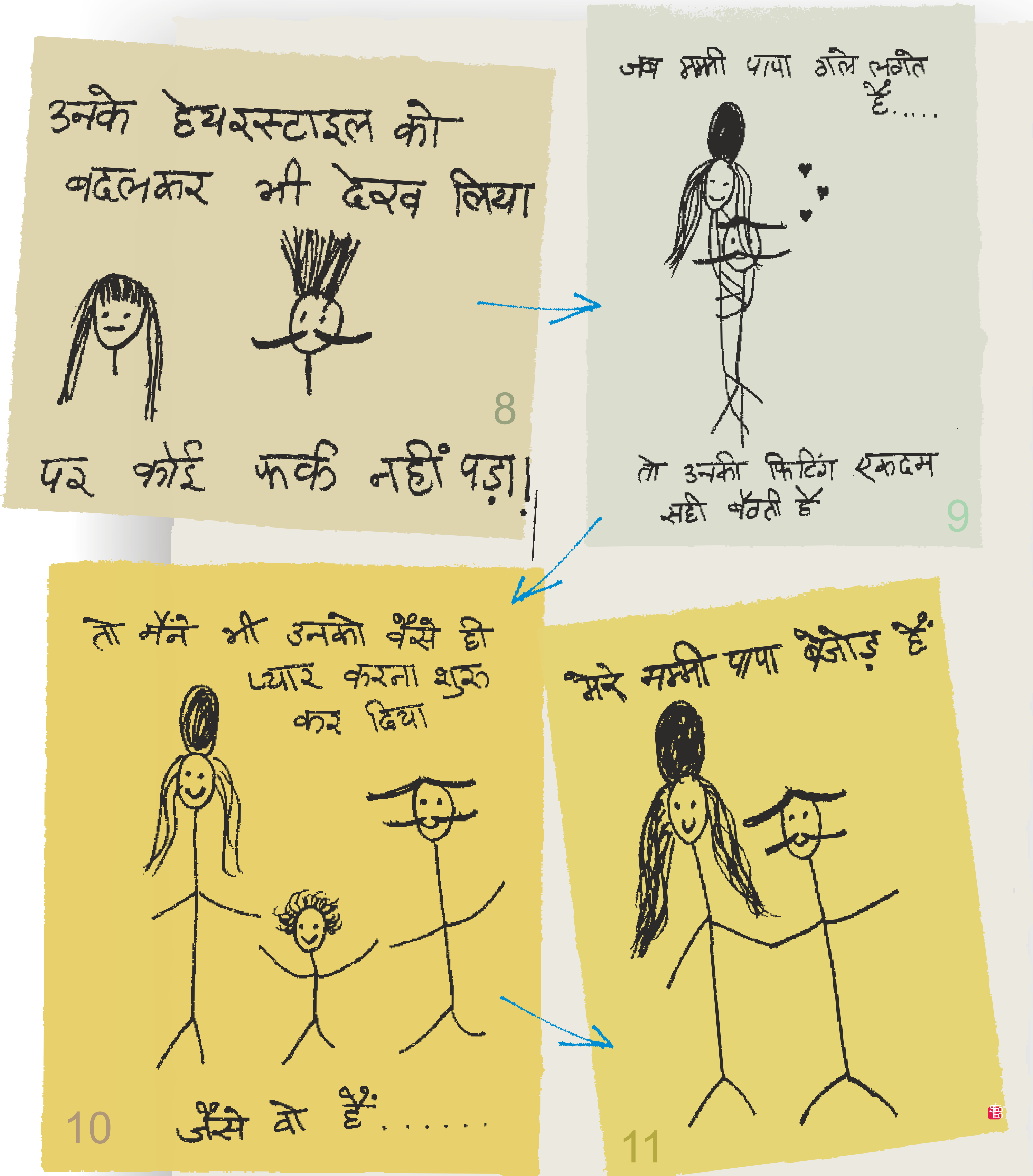
उनके हेयरस्टाइल को बदलकर भी देख लिया
पर कोई फर्क नहीं पड़ा!
8
जब मम्मी पापा गले लगते हैं.....
तो उनकी फिटिंग एकदम सही बैठती है
9
तो मैंने भी उनको वैसे ही प्यार करना शुरू कर दिया
जैसे वो हैं.......
10
मेरे मम्मी पापा बेजोड़ हैं
11

चित्र : नेहा

हम कहानी क्यों कहते हैं?

कुमार अम्बुज

चित्र : अतनु राय

हर एक कहानी अपने आप में एक छोटा-सा इतिहास है। एक गुज़र गया वक्त।

विज्ञान फंतासियों में भी, भले ही इशारा भविष्य की तरफ हो लेकिन वाक्य भूतकाल के ही लिखना होते हैं। अन्यथा वह कहानी नहीं रह जाती, भविष्यवाणी हो जाती है। बात कविता की करना है लेकिन जिस कविता के बारे में हम आपको बताने जा रहे हैं वह कहानी के बारे में है।

यानी कविता में जो कुछ बताया गया है वह कहानी को लेकर है।

तो, हम यानी संसार के सभी मनुष्य कहानी क्यों कहते हैं? इस सवाल का जवाब एक सुन्दर कविता में दिया गया है। यह कविता कवियित्री लाइजेल म्यूलर ने लिखी है, जिनकी उम्र इस समय आपकी परदादी के बराबर होगी। यानी वे खुद अपने आप में एक छोटा-सा इतिहास हैं, कहानी हैं।

लाइजेल जर्मनी में पैदा हुईं और अमेरिका में बस गईं। लम्बे समय तक एक गाँव में रहीं और वहाँ घर में जंगली फूलों, पक्षियों, कीट-पतंगों के साथ रहते हुए कविता लिखती रहीं। उनका कहना है कि हम यानी ये फूल, पक्षी, कीड़े और कविता, सब एक साथ रहते हैं। इससे साफ पता चलता है कि पर्यावरण और आसपास से उनका एक सीधा सम्बन्ध रहा है। इसलिए लोककथाओं-परीकथाओं से उनकी कविता का भी रिश्ता बन गया।

लेकिन उनकी ज़्यादा दिलचस्पी इतिहास को लेकर है। जो कक्षाओं में पढ़ाया जाता है, वह तारीखवार इतिहास नहीं, बल्कि हमारी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में, मनुष्यों के जीवन में, समाज और इस पूरे संसार के विकास में जो कुछ सहज प्राकृतिक घटता रहता है, जिसे इतिहासकार नहीं लिख पाते हैं बल्कि जो इधर-उधर की कथाओं में, मुहावरों और कविताओं में कहीं लिखा हो जाता है। जो हमारी याददाश्त में रह जाता है। जिसे हम हर पीढ़ी में अपने बच्चों को सुनाते चले जाते हैं। उस इतिहास को लाइजेल म्यूलर ने अपनी कविता में लगातार जगह दी है। वही उनके विचार का प्रमुख और केन्द्रीय तत्व रहा है। उनकी कविता को अनेक पुरस्कार मिले हैं। पुलित्ज़र अवॉर्ड भी, जो बहुत सम्मानजनक माना जाता है। उनकी कविता को खूब पढ़ा गया है, सराहा गया है।

अब हम उनकी कविता पर बात करें।

"हम कहानी क्यों कहते हैं?" शीर्षक की यह कविता, तीन हिस्सों में और कुछ लम्बी है लेकिन यहाँ कुछ सम्पादित हिस्सा ही पेश किया जा रहा है।

हम कहानी क्यों कहते हैं, इस कठिन सवाल का आसान-सा जबाव उन्होंने यह दिया है कि जब भी मनुष्य अपने आसपास और जीवन में कुछ ऐसा घटित होते हुए देखता है, जो उसने पहले न देखा हो। या जिसे देखकर वह खुशी या उदासी से भर गया हो। या जिससे उसे लगे कि अब भविष्य में कुछ नया किया जा सकता है। या उसे अपने सपने साकार करने की किसी इच्छा ने जकड़ लिया हो। और उसमें इस तरह उत्साह आ गया हो कि इस बारे में वह किसी को बताना चाहता हो, सुनाना चाहता हो, तो उसे कहानी कहना पड़ती है। वह घटना छोटी हो या बड़ी लेकिन यदि किसी दूसरे साथी को, दूसरे मनुष्य को बताना है तो कहानी में ही कहना पड़ेगा। इसलिए उसमें कल्पनाशीलता भी चाहिए। अन्यथा वह केवल घटना का वर्णन होगा, कहानी नहीं। यही वजह है कि हर आदमी, एक ही घटना को अपनी-अपनी तरह से कहता है।

लेकिन ये घटना, ये इच्छा, डींगें और ये कल्पना हर मनुष्य के साथ, हर समय एक साथ, लाखों करोड़ों की संख्या में रोज़ घटती रहती हैं, इसलिए हमारा पूरा मानवजीवन, यह सभ्यता भी विकसित होती जाती है। इसी में विनाश और विकास की कथा एक साथ गुँथ जाती है।

इस कविता का अन्त "और" शब्द से किया गया है। यानी फिर आगे क्या। और आगे कौन-सी कहानी। यह एक लम्बा असमाप्त रहनेवाला किस्सा है। कविता की शुरुआत में ही प्रकृति और मनुष्य का रिश्ता दिखाई देता है। इतिहासबोध तो पूरी कविता में है। बहरहाल, यह कविता ही ज़्यादा अच्छी तरह बताएगी कि हम कहानी क्यों कहते हैं।

इसके हर पैराग्राफ को ध्यान से पढ़ेंगे, गुनेंगे आपस में बात करेंगे तो यह भेद और ज़्यादा खुलता जाएगा। कविता की यही ताकत भी होती है।

हम कहानी क्यों कहते हैं

लाइजेल म्यूलर

क्योंकि हमारे पास कभी पत्तियाँ हुआ करती थीं
और सीलन भरे दिनों में
टीस उठती थी हमारी माँसपेशियों में
और क्योंकि हमारे बच्चे विश्वास करते थे कि वे
उड़ सकते हैं
एक आदिम इच्छा हमारे भीतर बनी रही

हम हमारी गुफाओं में आग के पास बैठे
और क्योंकि हम गरीब थे,
हमने एक विशाल खज़ाने की एक कहानी बनाई
जो केवल हमारे लिए ही खुलेगा

और क्योंकि हम हमेशा ही पराजित हुए
हमने असम्भव पहेलियों का आविष्कार किया
जिन्हें केवल हम ही हल कर सकते थे
और ऐसे राक्षस जिन्हें केवल हम मार सकते थे

क्योंकि हमारे जीवन की कहानी ही
हमारा जीवन हो गई

क्योंकि हममें से हर कोई
एक ही कहानी कहता है
लेकिन अलग तरह से कहता है

और हममें से कोई भी
एक तरह से दुबारा नहीं कहता है

क्योंकि नानी मकड़ी की तरह किस्से बुनती है
कि अपने बच्चों को मंत्रमुग्ध कर सके
और दादा हमें समझाना चाहते हैं
कि जो कुछ भी घटित हुआ
वह उनकी वजह से ही घटित हुआ

और हालाँकि हम बेतरतीबी से सुनते हैं
एक कान से सुनते हैं,
हम शुरू करेंगे हमारी कहानी इस शब्द से-
"और"।

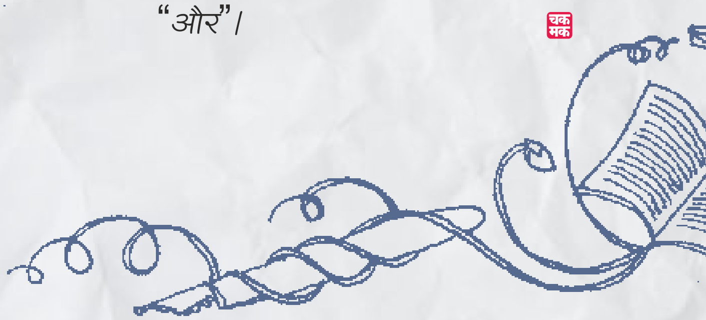

चित्र : दिलीप चिंचालकर

माथापच्ची

गोल-मटोल पेट है मेरा
मुँह है मेरा छोटा गोल
प्यासे की मैं प्यास बुझाऊँ
बूझो मेरा नाम (मटका)

हरे-भरे से बाग में मोती गिरे अनेक
माली गया बीनने बाकी बचे न एक (ओस)

1 इस चित्र में एक अहाते में बने तीन घर और उन तीनों के अहाते से बाहर जाने के फाटक दिए गए हैं। तुम्हें इन तीनों घरों से उनके अपने फाटक तक जाने के रास्ते बनाने हैं मगर ध्यान रहे:

1. तीनों रास्ते एक-दूसरे को छूने या काटने नहीं चाहिए।
2. तीनों रास्ते अहाते की चारदीवारी के अन्दर से ही जाने चाहिए।
3. और कोई भी रास्ता 'ए' के घर के पीछे से नहीं जा सकता।

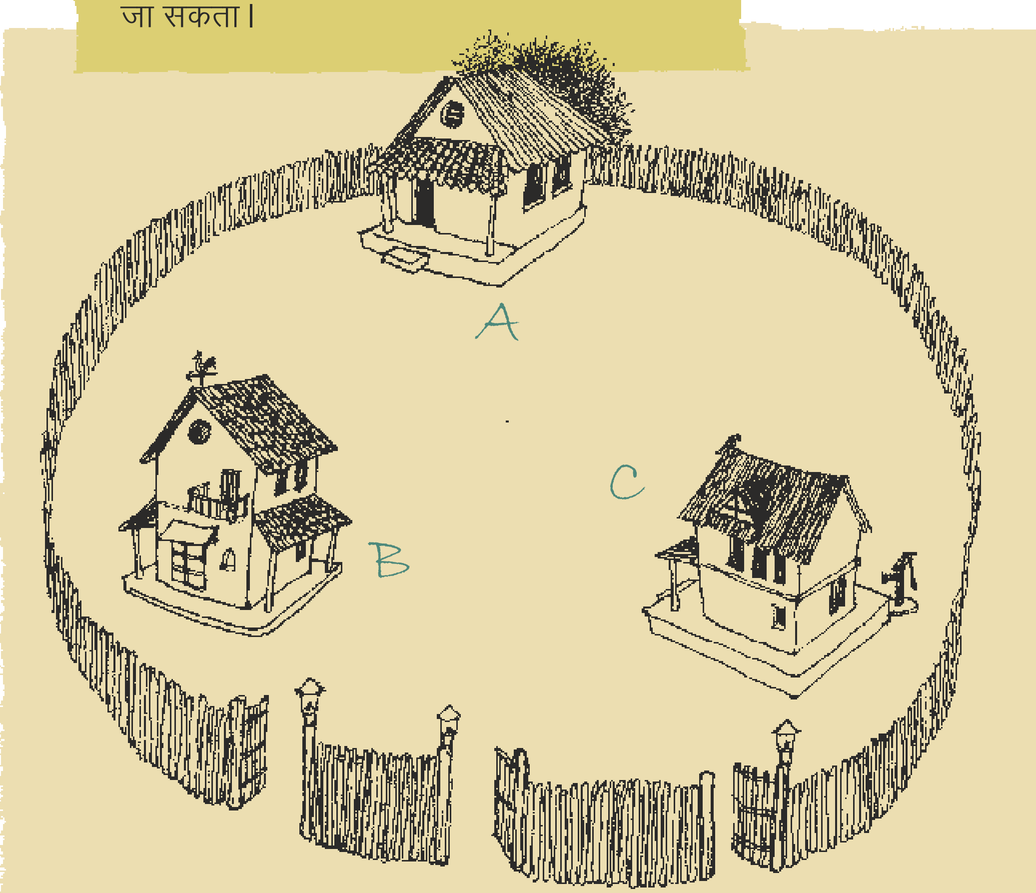

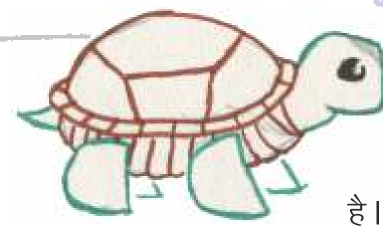

2 एक कछुआ चार घण्टे में एक किलोमीटर चलता है। प्रत्येक किलोमीटर के बाद वह 20 मिनट आराम करता है तो बताओ कि साढ़े तीन किलोमीटर की दूरी तय करने में उसे कितना समय लगेगा?

3 तुम्हें एक तिजोरी खोलनी है जिसका कोड मालूम करने के लिए नीचे कुछ क्लू दिए गए हैं।

वाक्य 1: 682: इनमें से एक संख्या सही है और सही स्थान पर है।

वाक्य 2: 614: इनमें से एक संख्या सही है किन्तु गलत स्थान पर है।

वाक्य 3: 206: दो संख्याएँ सही हैं लेकिन गलत स्थान पर हैं।

वाक्य 4: 738: कोई भी संख्या सही नही है।

वाक्य 5: 870: एक संख्या सही है किन्तु गलत स्थान पर है।

यदि सभी इशारे सही हों तो तिजोरी का कोड क्या होगा?

काँटों से निकली फूलों में उलझी
नाम बताओ समस्या सुलझी (तितली)

एक तालाब रस भरा बेल पड़ी लहराए
फूल खिला बेल पर फूल बेल को खाए (दीया)

चार रानियाँ एक है राजा
हरेक काम में उनका साझा (उँगलियाँ और अँगूठा)

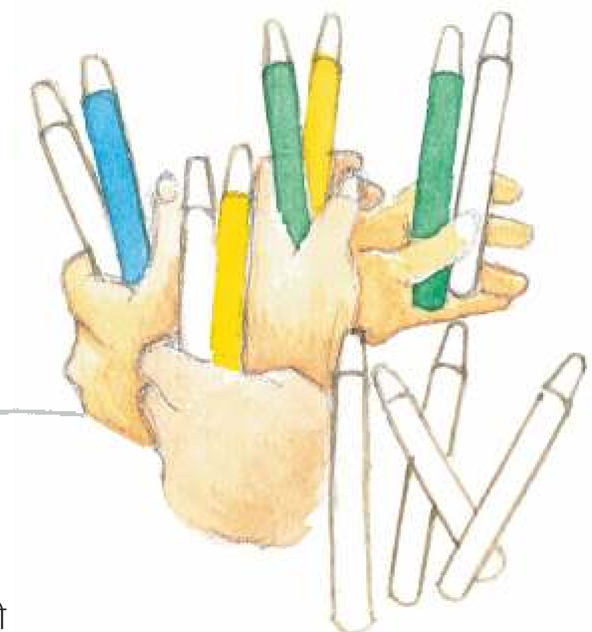

4

एक आदमी एक घड़ी देख रहा है जो कि सही समय बता रही है फिर भी वह आदमी नहीं जानता कि क्या समय हो रहा है भला क्यों?

5 तुम एक छोटे-से तालाब में नाव में बैठे हो। तुम्हारे पास लकड़ी का एक टुकड़ा है। यदि तुम उसे पानी में फेंक दो तो तालाब में पानी का स्तर बढ़ेगा, घटेगा या समान रहेगा? और क्यों?

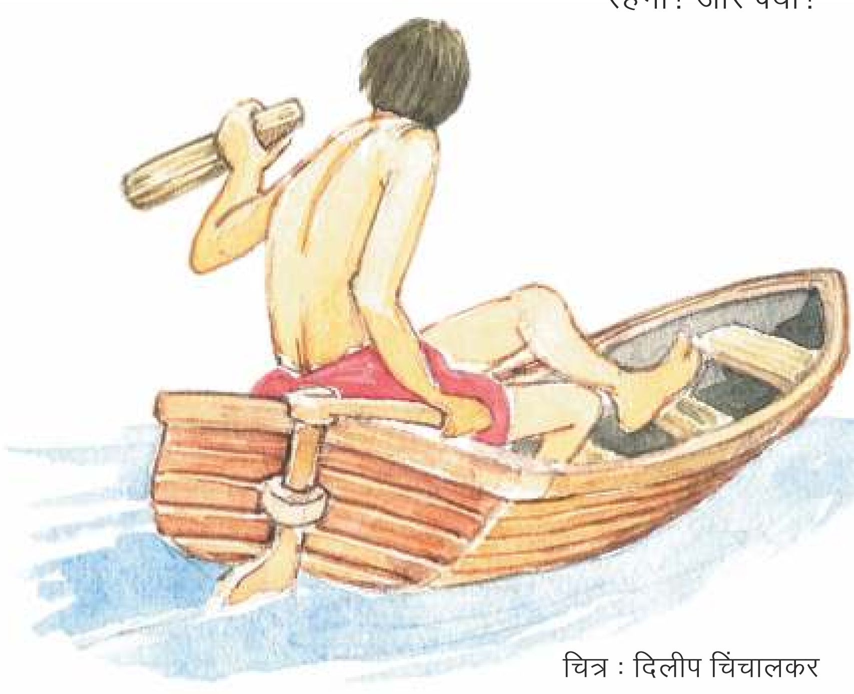

चित्र : दिलीप चिंचालकर

6 चार दोस्त रेहान, सारा, जसप्रीत और सुज़ैन के पास कुल 8 क्रेयान्स हैं जिनमें से 2 लाल, 2 हरे, 2 पीले और 2 नीले रंग के हैं। खेलने के दौरान उन सबके क्रेयान्स आपस में मिल गए। हमें बस इतना पता है कि उन सभी के पास दो क्रेयान्स थे और किसी के भी पास एक ही रंग के दो क्रेयान्स नहीं थे। उनमें से एक के पास एक पीला और एक नीला क्रेयान्स है और दूसरे के पास एक हरा और एक पीला क्रेयान्स है। रेहान के पास पीला क्रेयान नहीं है। सुज़ैन के पास के पास एक हरा क्रेयान है लेकिन उसके पास लाल क्रेयान नहीं है। सारा के पास एक पीला क्रेयान है और जसप्रीत के पास एक नीला क्रेयान है लेकिन उसके पास कोई हरा क्रेयान नहीं है। क्या अब तुम बता सकते हो कि कौन-से क्रेयान्स किसके हैं?

क्यूँ क्यूँ चिड़िया

यायावर

कभी देखा नहीं उसे
बस पास ही कहीं से
उस चिड़िया की आवाज़ सुनता हूँ
क्यूँ क्यूँ क्यूँ?

पता नहीं यह किस चिड़िया की आवाज़
पता नहीं उसके मन में क्या सवाल
मुझे तो सुनाई देती है बस
क्यूँ क्यूँ क्यूँ?

शायद मैं समझता हूँ
शायद दूसरी चिड़ियों के मन में आते होंगे सवाल
मगर केवल यही चिड़िया पूछती है
क्यूँ क्यूँ क्यूँ?

दूसरी चिड़ियों के मन में भी आते होंगे सवाल
मगर मैंने तो बस इसी को पूछते सुना है
क्यूँ क्यूँ क्यूँ...
क्यूँ क्यूँ क्यूँ...

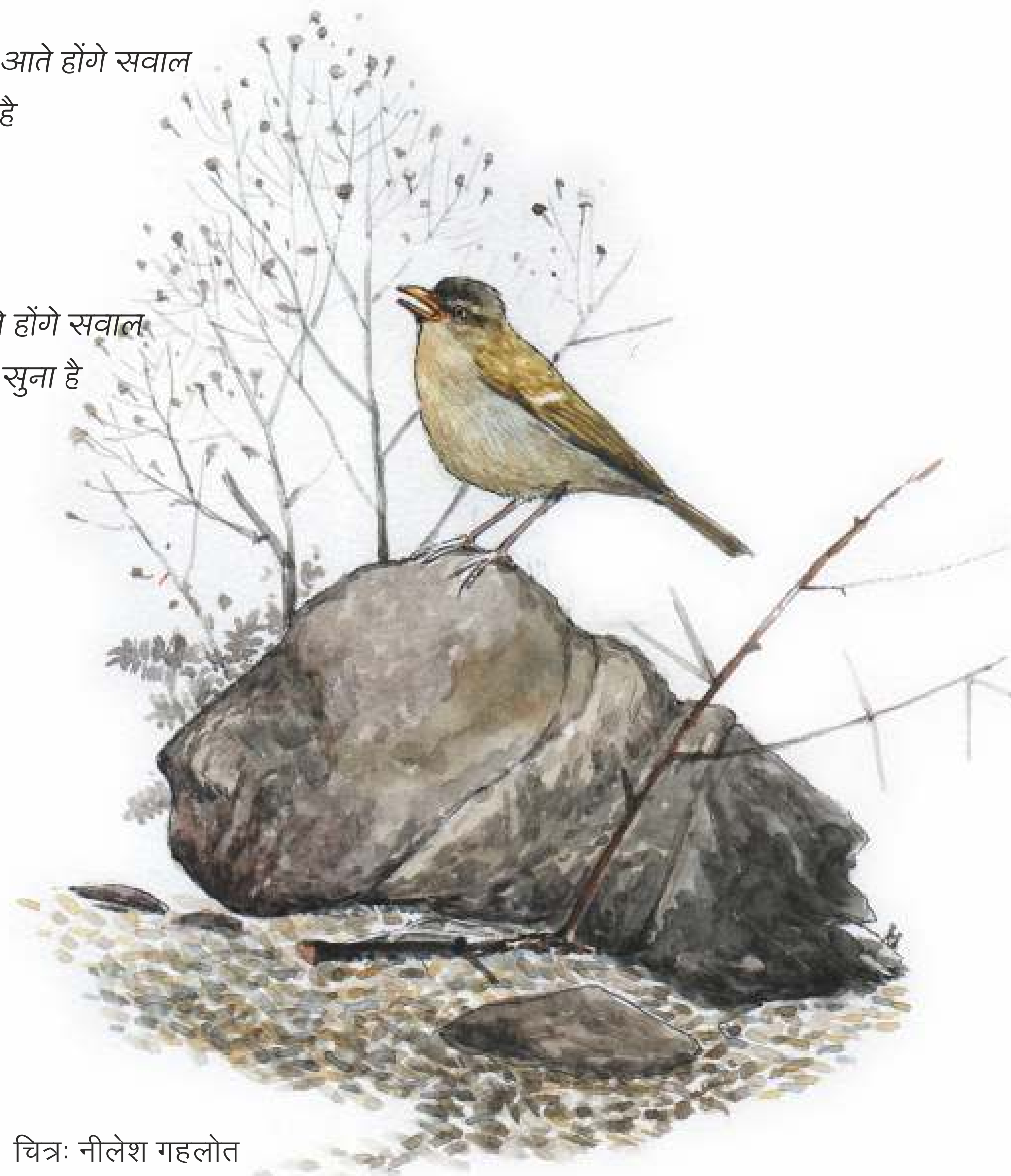

चित्रः नीलेश गहलोत

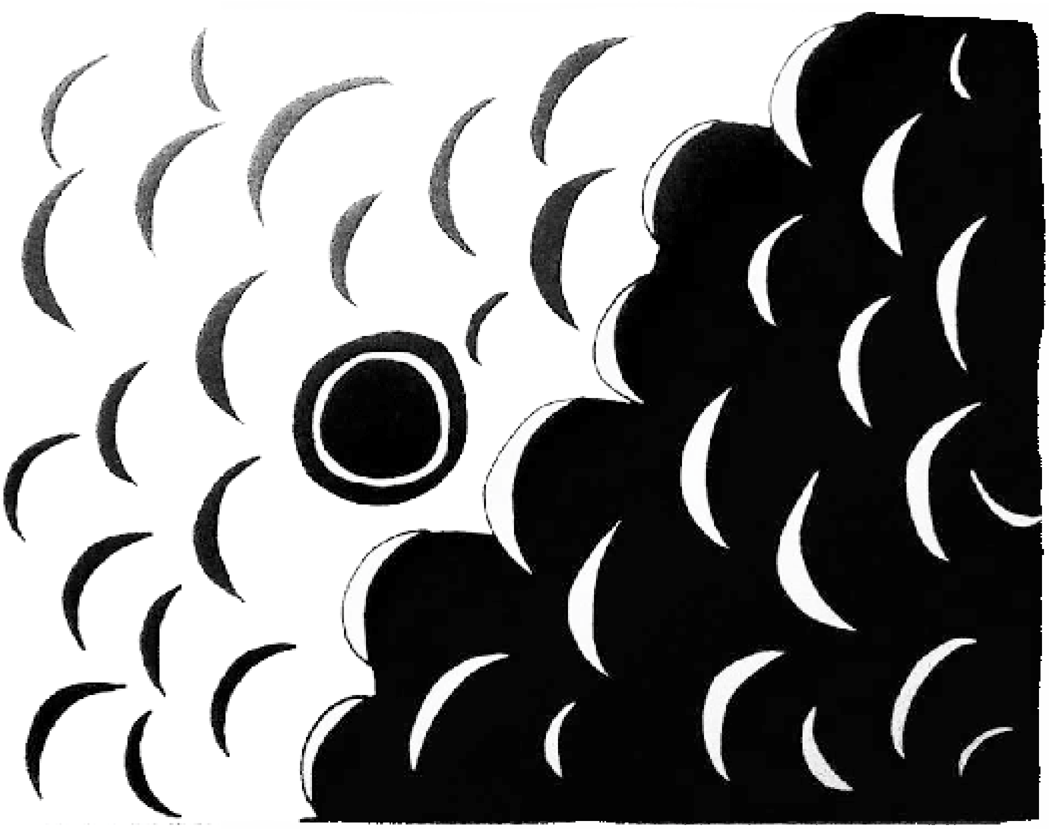

चाँद

चित्र : रुस्तम

मेहा

चाँद को देखने में मुझे बहुत मज़े आते हैं। जब भी मैं चाँद की तरफ देखती हूँ ऐसा लगता है कि चाँद हर दिन एक अलग-सा चेहरा बनाता है। कभी हँसता है, कभी रोता है। कभी भोली शक्ल बनाता है तो कभी गुस्से वाली। कभी उदास लगता है कभी खुश। पर हमेशा उसे देखने में मज़े आते हैं। जब मैं चलती हूँ तो चाँद भी चलता है। जब पापा चलते हैं तब भी चाँद चलता है। जब ममा चलती हैं तब भी चाँद चलता है और दादी चलती हैं तब भी चाँद चलता है। चाँद तो कुत्तों के साथ भी चलता है। मुझे लगता है कि चाँद सबके साथ चलता है। हर दिन चाँद का आकार भी बदल जाता है। आज देखो तो पूरा गोल। फिर थोड़े दिन बाद देखा तो पतली डण्डी जैसा फिर कभी तो दिखता ही नहीं है। जब चाँद गोल होता तो लगता कि शायद ज़्यादा खाना खाकर मोटा हो गया है। जब चाँद पतला हो जाता तो लगता कि कसरत करके फिर से सही हो गया है। जब चाँद पतली डण्डी जैसा हो जाता तो लगता की बेचारा बीमार हो गया है। और जब दिखता ही नहीं तो लगता कि शायद कहीं बाहर चला गया है। पर मुझे चाँद का बदलता आकार देख अच्छा लगता है। मैं चाँद से बातें भी करती हूँ। वो जवाब नहीं देता शायद उसको बोलना न आता हो। पर वह अलग-अलग चेहरे बनाता है तो मैं समझ जाती हूँ कि वह क्या कहना चाहता है। एक दिन चाँद बहुत ज़्यादा चमक रहा था। मुझे लगा शायद चाँद की तबियत खराब हो गई है। मैंने चाँद से कहा कि वह डॉक्टर को दिखा के आए। और दूसरे दिन वह एकदम ठीक हो गया। मुझे पता चल गया कि वह डॉक्टर से दवाई लेकर आया है। मैंने उसका हाल चाल पूछा उससे बातें कीं और सो गई। हमारी बातचीत ऐसे ही चलती रहती है और हमेशा चलती रहेगी।

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / भोपाल / 261 / 2015-17

चित्र पहेली

▶ बाएँ से दाएँ

▼ ऊपर से नीचे

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रेक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोन: 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादक: सुशील शुक्ल